


२२४
१६



उद्वाहसमयमीमांसा,

अनूनां कुमारीणामष्टादशान्यूनवर्षवयस्ककुमाराणां च

विवाह्यत्वव्यवस्थापनपरा,

ब्रह्मामृतवर्षिणीसभासंपादकेन

श्री१०८राजराजेश्वरीसंस्थापितकाशीस्थसंस्कृतप्रधानपाठ-

शालायां दर्शनशास्त्राध्यापकेन

श्रीराममिश्रशास्त्रिणा प्रणीता ।

HINDŪ MARRIAGE

ACCORDING TO

THE DHARMAŚĀSTRAS

BY

PANḌIT S. RA'MA MIS'RA S'ASTRI'

PROFESSOR OF HINDŪ PHILOSOPHY, GOVERNMENT COLLEGE, BENARES, AND PRESIDENT OF THE LITERARY SOCIETY, BANĀRAS PAṆḌITS.

BANĀRAS:

PRINTED AT THE MEDICAL HALL PRESS.

1890.



उद्वाहसमयमीमांसा,

अनृतूनां कुमारीणामष्टादशान्यूनवर्षवयस्ककुमाराणां च

विवाह्यत्वव्यवस्थापनपरा,

ब्रह्मामृतवर्षिणीसभासंपादकेन

श्री१०८राजराजेश्वरीसंस्थापितकाशीस्थसंस्कृतप्रधानपाठ-

शालायां दर्शनशास्त्राध्यापकेन

श्रीराममिश्रशास्त्रिणा प्रणीता ।

HINDŪ MARRIAGE

ACCORDING TO

THE DHARMAŚĀSTRAS

BY

PAṆḌIT S. RA'MA MIS'RA S'ASTRI'

PROFESSOR OF HINDŪ PHILOSOPHY, GOVERNMENT COLLEGE, BENARES, AND PRESIDENT OF THE LITERARY SOCIETY, BANĀRAS PAṆḌITS.

BANĀRAS:

PRINTED AT THE MEDICAL HALL PRESS.

1890.

DEDICATED

BY KIND PERMISSION

TO

His Honour Sir Auckland Colvin,

K. C. M. G., C. I. E.

LIEUTENANT-GOVERNOR, N.-W. P.,

AND

CHIEF COMMISSIONER OF OUDH.

PREFACE.

At the present time in various parts of India among those who profess to be followers of the Vaidik religion and practices, the custom of marrying girls in mere infancy is a common one, and people think that if they do not conform to this custom they incur sin. But the truth is that the rule about the infant marriage of girls enjoined in the *Dharmaśāstras* is not what is called *nitya* (a fixed and obligatory duty the non-performance of which is a sin), but *kámya* (optional and to be performed only through the desire of obtaining some particular benefit), and the principal age for marriage is that of twelve and upwards, as clearly declared by Manu, only it is necessary that the marriage ceremony should take place before the age of puberty is attained, (that is before the commencement of menstruation). Although, owing to differing climatic conditions, the age of puberty is not the same in all parts of India, and therefore no fixed age is stated in the *Dharmaśāstras*, nevertheless they enjoin that the rite of marriage should be performed at some time prior to that age as indicated above. Hence the infant marriage of females is a useless and needless practice, and one that ought to be abandoned as often entailing the evil of child-widowhood.

The next point for consideration is, at what age the marriage of males should take place. This, too, in accordance with the *Dharmaśástras*, should never be in

infancy; nor, to speak generally, before the age of eighteen, which is the essential meaning of the injunctions contained in those *Śāstras*. But the present practice of marrying boys in mere infancy results from ignorance both of what is physically right and of what is religiously enjoined, and is a fruitful cause of rendering those who are thus married puny, sickly, diseased, and miserable throughout their lives, to say nothing of the condition of their offspring.

Lastly, as regards cohabitation, the *Dharmaśāstras* (e. g., *A'śvalāyana*, *Manu*, and *Yama*) with one voice declare that it should commence only after puberty, (i. e. after the appearance of the catamenia). Among the upper classes, people of all the four castes observe this rule, and with them cohabitation is never allowed beforehand, not only out of regard for the injunctions of the *Dharmaśāstras*, but also because to act otherwise would be opposed to their traditional customs. In the warmer parts of India, such as Bengal, Madras, and Bombay, females reach this state of maturity usually about the twelfth year, and in the colder regions of Rājputānā and the Panjāb about the thirteenth, and among the poorer classes still later. On this account the great physicians and *rishis* of this country, *Charaka* and *Suśruta*, have laid down the general rule that the wife should not join her husband before she has reached the age of twelve at least. (In those places in the *Mahábhárata* and *Brahma Purána* where the age for marriage in the case of females is declared to be sixteen, eighteen, or twenty, this applies to former times—in former times

women attained maturity later, and retained their vigour longer).

I entertain the hope that by means of this book people will come to know that marriage at the age of twelve or thirteen is not prohibited by the *Śāstras*, so long as it takes place before the period above indicated. Hence the marriage of mere infants is wrong. In any case, as appears from what I have stated above, males should not marry before eighteen, and in no rank of life should the wife join her husband till she is past the age of eleven.*

My earnest prayer is that the princes and wealthy nobles of this country will exert themselves in this matter, and freely provide means for the circulation of this work throughout India. Then, if they follow the course therein advocated, will the inhabitants of Bhāratavarsha become wiser, more powerful, energetic, and courageous, and better qualified to understand and take part in abstruse and difficult political concerns.

A true friend of the Indian People,
PAṆḌIT RA'MA MISRA S'A'STRI',
Banāras.

7th December, 1890.

* If people cannot all at once conform, as I think they should conform to the directions of Manu and Suśruta, and make the age of twelve the earliest.

॥ श्रियै नमः ॥

॥ श्रीपतये नमः ॥

उद्वाहसमयमीमांसा,

भाषाभूमिका ।

क्या कोई संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं जो अपने कुल गोत्र-की वृद्धि और समृद्धि न चाहें? और स्वाभाविक बल, पुष्टि, शरीर-तेज और अङ्गसौष्ठव की इच्छा न करते होंय? मुझे तो दृढ़ निश्चय है कि समस्त ही संसार के मनुष्य एकस्वर से स्वीकार करेंगे कि इन सब पूर्वोक्त फल की कामना स्वभावसिद्ध समस्त ही विचारशक्तिवाले जन्तुमात्र को है, इतना ही प्रभेद है कि बुद्धि-मान लोग फल की कामना होते ही उपाय की चिन्ता करते हैं और उसे किसी न किसी प्रकार से पाय भी जाते हैं और सिद्ध कर लेते हैं, और बुद्धिहीन आलसी दैवहत लोग सर्वदा फल की इच्छा ही करते २ प्राणान्त पाय जाते हैं उपाय की तो नाममात्र भी भावना कभी नहीं जानते, और यह भी समस्तजन स्वीकार करेंगे कि जो बात पूर्वही बिगड़ जाती है उसे फिर बनाना कठिन है और विशेष करके पुरुषार्थ चतुष्टय के साधन का महोपायस्वरूप शरीर का, जिस्की रक्षा करने से चारो ही पुरुषार्थ सिद्ध हो सकते हैं, और जिस्की उपेक्षा से चारो ही पुरुषार्थ रसातल में लीन हो जाते हैं। तो, यहां पर विचारना उचित है कि शरीर कौन वस्तु है?। इस्के उत्तर में आस्तिक, नास्तिक, वैद्य, हकीम, डाक्टर, सबी फिरके के और समस्त ही मत के लोग ऐकमत्य से कहैंगे कि,

माता पिता के शुक्र और शोणित से बना, और विविध खाद्य पेय से पोषित, पाञ्चभौतिक ह्रासवृद्धियुक्त एक विचित्र मांसपिण्ड है जिस्के दृष्टान्त देने के अर्थ भूपृष्ठ पर कौन कहै नाकपृष्ठ पर भी कोई वस्तु नहीं देख पड़ती। जिस पिण्ड के भीतर शुक, वामदेव ऐसे विरक्त महानुभाव लोगों के वैराग्यमय चित्त का चित्र बना है; प्रह्लाद, पराशर ऐसे हरिभक्तजनों के भक्तिभाजन अन्तःकरण का चित्र खचित है। और जिस्के भीतर भीम जैसे वीर, अर्जुन ऐसे कीर्तिमान और विविध विद्याविशारद, कर्ण ऐसे दानशील, दधीचि ऐसे परोपकारी लोगों के समस्त व्यवहार और सदाचार का मूलभूत कोई विलक्षण तत्त्व बैठा है; इस्का वर्णन कहां तक होसकता है, यही संसारस्वरूप महावटवृक्ष का परमनिदान बीज है इसी से आप लोग सन्तोष करिये और यह भी जान लीजिये कि इस शरीर की तुलना में समस्त संसार की समृद्धि अतितुच्छ है। बादशाहों की बादशाही, राजों का राजत्व, विद्वानों की विद्वत्ता, पराक्रमी लोगों का पराक्रम, सबही इस्का छोटा सा विलास है। बस यही निश्चय करके आज मैं इस बात में तत्पर हुआ हूं कि आप लोगों को इस का कुछ परिचय देसकूं कि शरीर किस चाल से उत्तम होता है। प्रिय भारतवर्षीय जनसमूह! ध्यान रखना, जब तक बीज अच्छा नहीं होता तब तक भूमि कभी उत्तम फल नहीं देती, क्या कभी कच्चे बीज से भी उत्तम फल उत्पन्न हुआ है? आप लोग अपने छोटे २ बच्चों का विवाह कर देते हैं और कच्ची अवस्था ही में वे बालक स्त्रीप्रसङ्ग के घोर अनर्थ में पड़जाते हैं। यह सब जानते हैं कि समस्त ही वस्तु की एक पूर्वावस्था और दूसरी उत्तरावस्था, इसी प्रकार एक आगमावस्था और दूसरी अपायावस्था होती है। इन में से बाल्यावस्था मनुष्य की पूर्वावस्था होती है और यही अवस्था

बल, वीर्य, तेज, बुद्धि, शरीर की लावण्य, पुष्टि, इन सर्व की आगमावस्था होती है। और आगमावस्था ही में यदि कोई व्यय करने लगजाय तो कैसी उस की दुरवस्था होगी यह विचार आप स्वयं कर सकते हैं। यदि तालाब में पानी के आगमन ही के समय से प्रवाह होना आरम्भ हो जाय तो कदापि वह तालाब नहीं भर सकता, चाहे कैसे ही वेग से उस्में जल का आगमन क्यों न होय। यही एक दृष्टान्त, बाल्यविवाह की कुरीति से आप लोगों की कैसी हानि होती है, इसे दिखाने को भरपूर है॥

इस अवसर पर कितने देश के शत्रु निज कुलनाशक यह कह बैठेंगे कि "विवाह बाल्य में होता है तो क्या हुआ, स्त्री का प्रसङ्ग तो योग्य समय परही होता है", तो यहां पर हम यही कहेंगे कि यह महा ही अनर्थ की बात है कि वृथा किसी की कन्या को बहू बनाय बालवैधव्य के घोर दुःखाग्निज्वाला के साम्हने हाथ पैर काट के विवाहरूप महाकठोर अनिवार्य लोहे की सांकल से बांध देना, जिस सांकल से बद्ध बालिका को मातृकुल, पितृकुल और भ्रातृ मित्रवर्ग कोई भी नहीं छुड़ा सकते, हां नये समाजी, पुराने ब्रह्मवादी इत्यादि लोग ऐश्वरीशक्ति के बल से भले ही छुड़ाकर घोर अपवाद का सामान जुटा सकैं, पर जब यही घोर अनर्थ इस बाल्यविवाह के संनिहित रहता है तो इसे बुद्धिमान भी कभी करैं यह बड़ा अनर्थ है। कितने लोग इस पर आंख मीचकर यह भी कहेंगे कि "संसार में सर्व ही अवस्था में मृत्यु अनिवार्य है, यदि तरुण पुरुष का विवाह होय तो क्या बैधव्य भय नहीं है सुख दुःख तो केवल ईश्वर के अधीन है, हमने अनेक बालकों को देखा है कि जिनका विवाह अत्यन्त बाल्य में हुआ है और वे सर्व ही प्रकार जन्म भर अच्छे रहे हैं और

कितने तरुण भी विवाह के मास ही के भीतर अपनी नवीन तरुणी को छोड़कर यम मन्दिर की यात्रा कर गये हैं, इस हेतु बाल्यविवाह पर दोष देना केवल निरीश्वर जगत को माननेवाले लोगों ही को शोभा देता है"। इस पर हम बहुत शास्त्रार्थ और विचार न करके इतना ही कहते हैं कि रणजीतसिंह, शिवाजी, और हैदरअली इन तीनों महाशयों ने अपना नाम लिखना भी नहीं सीखा था और बहुत बड़े पुरुष हो गुजरे, यह ऐतिहासिक बात है, इसे सर्व ही को स्वीकार करना होगा, तो आप अब अपने कुल में किसी को भी लिखना पढ़ना मत सिखलाइये, बरन जूआ और डकैती की शिक्षा दीजिये क्योंकि, इन सर्व कार्यों में भी अनेक लोग बड़े धनी और नामी हो चुके हैं, विशेष करके हैदर ने इतना नाम और देश-संपत्ति को जो पाया था सो प्राय: बेईमानी के बल से और शिवाजी ने डकैती से; तो अब आप बेईमानी और डकैती ही के भरोसे से बड़े होने की चेष्टा कीजिये। यदि कहीं इस पर आप भूल कर यह कह बैठेंगे कि, "होना न होना तो केवल ईश्वर के हाथ है परंतु मनुष्य को चेष्टा तो अच्छी ही करनी उचित है" तो अब आप हमारे पथ पर आगये, यही मेरा भी वक्तव्य है कि मनुष्य को चेष्टा अच्छी करनी उचित है यों तो "बने की बात है" यह मसल मशहूर है। एक समय बड़े सिकंदर ने किसी डाकू को पकड़ा और उस्से पूछा कि तुम ऐसा काम क्यों करते हो? तब उसने इस के उत्तर में यही कहा कि "तू बड़ी फौज, बहुत जहाज और बड़े २ सामान लेकर देशों को लूटता है और मैं थोड़े सामान और थोड़े आदमी के साथ उसी काम को करता हूं परंतु "बने की बात है" तू तो बड़ा डकैत है पर तुझे तो लोग बड़ा बादशाह करके जानते, मानते हैं और मुझे डकैत कहते हैं", तो इस दृष्टान्त

से माना कि 'बने की बात है' परन्तु चोरी डकैती बुरी है और भले काम तो भले ही है यह सर्व ही को मानना होगा । तो फिर यह भी आप विचार करलीजिये कि कदाचित किसी को बाल्यविवाह करने पर भी किसी घटनान्तर से शरीर अच्छा रहा यह बात कदाचित् हो सकती है परन्तु बाल्यविवाह अनर्थ का हेतु, और तारुण्य का विवाह सर्वथा उचित और शारीर सुख बल का हेतु है यह तो अवश्य ही मानना होगा । तो अब आप निश्चय कीजिये कि संसार सर्वही के देशों में बालकों की मृत्यु की अपेक्षा अधिक वयवाले लोगों का मरण अल्प होता है, जैसे २ अधिक वय होता है तैसे २ शरीर चिरस्थायी होता जाता है । इस में आम्र वृक्ष के पुष्प आने के समय से फल की पुष्टि पर्यन्त अवस्था ठीक दृष्टान्त है जितने संख्या में पुष्प गिरते हैं उतने टिकोरे नहीं गिरते और जितने टिकोरे गिरते हैं उतने पुष्ट आम नहीं गिरते और यही मनुष्य की संतति की भी दशा है तो, आप व्यर्थ पौत्र और दौहित्र के मुखनिरीक्षण की इच्छा से बालिका कन्या को एक बालक (जिसे धोती कहां है यह भी ज्ञान नहीं है) के साथ काहे नष्ट करते हैं, उसे तो आप ब्रह्मचर्य में रखकर विद्या सिखलाइये कि जिस में वह लोक द्वय का अभिज्ञ बन जाय और आप का कुलभूषण होजाय और जगत का भारभूत न होय । यहां पर कितने अल्पबुद्धि, बाल्यविवाह के हठी यह भी कह बैठते हैं कि "यह ब्रह्मचर्य का समय नहीं है, अब तो कलिकाल में बालक अवस्था ही में लड़के जोरू खोजने लगते हैं इस हेतु इन का बाल्यदशा ही में विवाह करना उचित है, नहीं तो बिगड़ जाते हैं" । पत्थर पड़े, इस बुद्धि पर, एक बालक के ब्रह्मचर्य के निर्वाह कराने में तो पिता माता असमर्थ हैं और विवाह के अनन्तर जब वे दो भये और प्रतिवर्ष तीन, चार,

पांच होने लगे तो उन का पालनपोषण से निर्वाह वे कैसे करसकेंगे ! बड़ी अंधेर की बात है जो बालक का ब्रह्मचर्य निर्वाह नहीं कराय सकें, वे तब पांच दल का भरण पोषण कैसे कर सकेंगे इस्का विचार नहीं करते । यहां पर एक यह भी बात ध्यान देने की है कि मैं तीस और पचीस वर्ष की अवस्था पर्यन्त ब्रह्मचर्य के उपदेश करने में उद्योग नहीं करता, मेरा केवल यही वक्तव्य है कि निज देश के जल वायु के अनुकूल और भोजनाच्छादन के योग्य निज वित्त के अनुसार जिस देश में जितने वय पर यौवन शरीर में दृढ़बद्ध होजाय और अस्थि प्रौढ होजांय तब आप अपने बालकों की शादी कीजिये जिस में वैधव्य भय भी आपेक्षिक अत्यल्प होजाय, बालकों के अङ्ग भी दृढ़ होजांय और आगे उन की संतति भी नीरोग दृढाङ्ग * उत्पन्न होय । परन्तु सब देश में पुरुष को स्त्री का प्रसङ्ग अठारह वर्ष की अवस्था के पूर्व कदापि न होना चाहिये, यह सर्व देश और सर्वकाल का नियम है इसे तो कदाचित् भी उल्लंघन नहीं करना चाहिये. " तिरिया तेरह मरद अठारह " यह प्राचीनकाल से पामर पर्यन्त की कहावत प्रसिद्ध है इसे याद रखिये और स्त्रियों को भी बिना यौवन आये पुरुष संपर्क अहितहेतु है और सर्वथा धर्मशास्त्र और वैद्यकशास्त्र के विरुद्ध है यह समस्त वृत्त संस्कृत में हमने विशदरूप से लिखा है उसे देखने से ही यथार्थ परिचय होजायगा । आज कल्ह के अतिबालिका विवाह के कारण संसार का अस्वास्थ्य होता है और प्रजा अल्पायुष, स्मृतिशक्तिहीन, दीन, विपत्तिग्रस्त होती जाती है इत्यादि सब बात हमने संस्कृत में वर्णन की है, दैजे में धन ठहरा कर बालकों का विवाह करना अथवा धन लेकर कन्या

* धर्मशास्त्र में दृढाङ्ग संतति उत्पन्न करना लिखा है फिर यह बात बालसंपर्क से क्योंकर हो सकती है ।

को देना वा वृद्धावस्था में विवाह करना तथा वर की अपेक्षा बड़े वय की कन्या से विवाह करना इत्यादि भी शास्त्र में निषिद्ध है यह सब निरूपण किया गया है ॥

अब इस अवसर पर अनेक जन (जिन की समाज में प्रतिपत्ति अल्प है) असावधानता से बालविवाह के विरुद्ध कानून के शरण लेने का मनोरथ करते हैं और वैदिक पवित्र विवाहविधि को कलङ्कित करके आप भी अपना हृदय–दौर्बल्य दिखाते हैं परन्तु सरकार ऐसी नहीं है कि वह भी अपना दौर्बल्य * दिखावे, वह तो एक बहुत ही उत्तम नीतिपरिपूर्ण विश्वसनीय न्याय से विशाल निरालस और दयावान है, इस हेतु हमें हमारे धर्म के विरोधी अथवा न जाननेवाले मिथ्या घमंडी और हमारे पवित्र सनातन वैदिकधर्मपर आघात पहुंचाने की इच्छा करनेवाले देशी और विदेशियों का अणुमात्र भी भय नहीं है कि वे हमारा इङ्गलेण्ड में मिथ्या वकालतनामा लेकर कुछ धर्माघात कर सकैं तथापि हमें अपनी तरफ से प्रकाशरूप से अपने विवाह इत्यादिक सामाजिक कार्यों का प्रबन्ध करना चाहिये। यद्यपि हमारे यहां सामाजिक उपदेश देनेवाले नगर के निवासी परम-विद्वान पण्डितों से लेकर ग्रामनिवासी साधारण पाधापुरोहित पर्यन्त हैं, और वे प्रायः उत्तम ही कार्य करते हैं परन्तु अधिक बक २ नहीं करते और न इंगलेण्ड में जाते और न तो इधर उधर अपना पत्र व्यवहार करके अपने माँथे में देश हितैषी का कलंगी खोंसते हैं। केवल उन में इतनी त्रुटि है कि न तो वे कोई दिखाऊं यत्न करते और न तो समाज के अगुवा होने का घमंड दिखाते तथापि कार्य करते ही हैं वस्तुतः उन में और कोई

* सरकार जिन पर कानून बनाती है उन्हें बिना पूछे उसका प्रचार कभी नहीं करती।

त्रुटि नहीं है। प्रति दिन सर्व बुद्धिमान् ब्राह्मण बालविवाह, अतिबालिकाविवाह, और वृद्धविवाह को अपने घर से और वेदानुयायी चातुर्वर्ण्य समाज से उठाते जाते हैं, और भी जो कुछ समाजमें दोष पाये जाते हैं उन्हें भी शनैः २ सुधारते जाते हैं। अतिबालिका से संपर्क करना यह तो वेदानुयायी उच्चजातीय चातुर्वर्ण्यमें संभव ही नहीं है, क्योंकि गरीब से गरीब और अपठित के घर भी स्त्रियों के नवीन ऋतु होने पर पुष्पोत्सव होता है जिसे "फूलचौक" कहते हैं। और पुष्प तो स्त्रियों को बाल्य से उत्तीर्ण होने ही से होता है यह बात सर्वथा सुपरीक्षित है और ऋतु होने के अनन्तर किसी सुमुहूर्त से स्त्री की शुद्धि के पश्चात् गर्भाधान संस्कार होता है फिर क्योंकर हम लोगों में बालिका संपर्क की संभावना हो सकती है? यह संभावना तो उन लोगों में हो सकती है जिन के यहां स्त्रीसंभोग पशुसंप्रदाय और केवल इन्द्रियपरायणता ही से होता होगा, हमारे वैदिक मार्ग में तो यह परमपवित्र संपर्क बड़े २ विधि विधान से वैदिक मन्त्रपूर्वक होता है॥

रहा अब बालविवाह तो उसकी यह दशा है कि कितनी तो हमारे देश में ऐसा संप्रदाय हैं कि जिन में युवावस्था ही में विवाह पुरुषों का होता है। जैसे कि मिथिलादेश में मैथिल मात्र का विवाह २० बीस वर्ष की अवस्था के पहिले नहीं होता (बल्कि ३० और ३५ तथा चालीस तक होता है जिसे कि समयानुसार हम उत्तम नहीं समझ सकते) और यह तो स्वाभाविक वार्ता है कि जब जिस देश में बड़ी अवस्था के पुरुष का विवाह होगा तब उस देश में अतिबालिका के संग नहीं हो सकता एक बड़े विद्याप्रधान मिथिला देश की तो वार्ता हो चुकी रहा कान्यकुब्ज देश, सो वहां तो बालिकाविवाह की कौन कथा

वृद्धकुमारी का भी विवाह होता है जिस के रोकने का उपाय कान्यकुब्ज भी करते हैं और अन्य लोग भी करते हैं और आशा है कि शीघ्र ही हम लोग इस अनर्थ को निवृत्त कर सकेंगे। यह तो ईश्वर का नियम है कि जहां बड़ी अवस्था में कन्याओं का विवाह होता है वहां प्रायः वर छोटे नहीं हो सकते तो कान्यकुब्ज देश में भी विवाह समय प्रायः ठीक ही है ॥

रहा राजपूताना तो वहां पचास वर्ष के पूर्व सर्व ही वर्णों में अधिक वय के वर के संग अधिक वय की कन्या का विवाह होता था परन्तु जब से सरकार अंगरेज की अमलदारी में वहां के वैश्य कलकत्ता बंबई मद्रास चीन ब्रह्मा इत्यादि मुल्कों में जाकर तिजारत के कारण धनी होने लगे तब से उन्हें उन के अभाग्यवश * बाल्यविवाह ने घेरा है बल्कि वृद्धविवाह † और बड़ी उमर की कन्या के संग छोटी वय के लड़के के व्याहरूप घोर अन्धकार ने भी उन्हें दबाया है और उन के संग उस देश के अपठितब्राह्मणादिक भी इस दुराचार से दूर नहीं हैं परन्तु परमेश्वर की दया से राजपूत जाति में तो यह दुराचार नहीं है और आशा है कि यह जाति इस दुराचार से दूर भी रहेगी। और राजपूताना के निकटस्थ होने ही के कारण दिल्ली के प्रान्त और ब्रज के निकटस्थ देशों में भी यह बाल्यविवाह की आग फैली थी परन्तु धन्यवाद है भारत की ब्राह्मणमण्डली को कि उस ने इस के रोकने के उत्तम २ उपाय किये हैं और सुफल भी होते जाते हैं। पञ्जाब में भी युवावस्था ही के वरवधू का विवाह होता

* इस्के अतिरिक्त इन में सर्व ही वैश्य गुण है परंतु "जहं गुलाब तहां कांटे"।

† होली के दिनों में जहां मारवाड़ी वैश्य, और ब्राह्मणों का जमघटा होता है वहां (वाला ने परणाय जोवनों खोये है) इसे डफ से गाते हैं।

था और अभी भी अति बाल्यावस्था में नहीं होता परन्तु कुछ रीति बिगड़ गई है सो अब पठित ब्राह्मणमण्डली ने अपनी उपदेश बीरता से उसे भी सुधार देने का यत्न किया है और नित्य २ सामाजिक संशोधन होते ही जांयगे क्योंकि वहां के रईस लोगें की भी इस तरफ विशेष दृष्टि है ॥

बङ्गदेश के विषय में हम यही ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह देश धर्मशास्त्र की मर्यादा रखकर अपना सामाजिक संशोधन कर लेवे, और आशा है कि उड़ीसा भी बङ्गानुयायी होवे। और यही वक्तव्य मद्रास और बम्बई के उन प्रान्तों के विषय में है जहां संस्कृत विद्या जीर्ण शीर्ण है और उस के स्थान पर नई २ विद्या और ख़यालातें सरगर्म हैं ॥

अब रहा नर्मदा पार और गुजरात तो वहां की इन दिनें यह दशा है कि एक ओर तो लोग धर्मशास्त्र के नाम ही पर घृणा करते हैं और एक ओर वे लोग हैं जो जानते हैं कि सात आठ वर्ष की कन्या के विवाह न करने से न तो कोई धर्म की हानि है और न समाज क्षति ही है परन्तु हठ वश अतिबालिका के विवाह में वैधव्यदोष अधिकतर देखते हैं तौभी जानबूझकर आग में गिरते हैं यद्यपि नर्मदा पार में बालकों का विवाह प्रायः उचित समय पर होता है न कि अठारह बीस वर्ष के भीतर, परन्तु उधर कुछ कन्याओं के वय में अधिक करने ही से ठीक हो जाता है उस पर ध्यान देना अत्यावश्यक है ॥

यहां पर मुझे उन दोनें दलें का (जो केवल मनमाना आइनी विवाह चाहते हैं, और वे जो शास्त्र का तात्पर्य न जान पुरानी लकीर के फकीर हो वृथा अतिबालिका के विवाह में आग्रह किये हैं) हठ देख बड़ा कष्ट होता है, और यही कहना पड़ता है

कि ये दोनों दल मिल के काम करैं तो सोना और सुगन्ध होजाय इस के अर्थ प्रतिनगर ग्राम देशों में पञ्चायत होकर धर्मशास्त्र के अविरुद्ध तत्तद्देश के जल वायु के अनुसार विवाहकाल* निर्णय होजाय तो, जो आज बालविवाह के कारण हमारे देश में बल, वीर्य, पराक्रम, तीक्ष्ण बुद्धि, और नवीन शास्त्रीय तथा लौकिक कल्पनाशक्ति का अभाव हो गया है और नाना प्रकार के अज्ञात-नाम रोग उत्पन्न होते हैं वे एकान्ततः मिट जांय ॥

आशा है कि हमारे देशभाई और पुरानी पण्डितमण्डली (जिसे आज भी लोग भारतवर्ष में बहुत मानते हैं) इसे गौरव से विचार करेंगे और हठ न करके ईर्ष्या और अन्धकार को त्याग यथार्थ कार्य का अनुष्ठान करेंगे ॥

आप लोगों का वही शुभचिन्तक,
राममिश्रशास्त्री,
ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा बनारस ।



* जैसा कि ऋतु के पूर्व इस पुस्तक में कालनिर्णय किया है उसे देशानुसार कर लेनाही अवशिष्ट है ।

॥ श्रीः ॥

॥ श्रियै नमः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

उद्वाहसमयमीमांसा।

श्रीशार्ङ्घ्रिद्वितयी प्रपित्सुजनतासिध्यत्समीहाविधौ ।
यस्याः स्वारसिकानवद्यकरुणा जागर्त्यमुचामिशम् ॥
स्वाराजत्यतिदुर्गतोऽपि च यया दृष्टो दयातः सकृद् ।
यत्संबन्धनिबन्धनं भगवतः श्रीमत्त्वमेनां श्रये ॥ १ ॥

कृष्णं यथा भीष्मककन्यका च श्रीरुक्मिणी वै वसुदेवसूनुम् ।
लेभे तथा स्त्री पुरुषं लभेत स्त्रियं नरश्चापि मनोऽनुकूलाम् ॥ २ ॥
सतीशिवौ भीमसुतानलौ च श्रीजानकीदाशरथी गुणाढ्यौ ।
श्रीद्रौपदीपाण्डुसुतौ सुयुक्तौ यथा तथा स्त्रीपुरुषौ भवेताम् ॥ ३ ॥
अरुन्धती चैव तथा वसिष्ठो नरस्य नार्याश्च शुभं दिशेताम् ।
यत्पुत्रपौत्रादिसमृद्धियुक्ता नराश्च नार्य्यश्च भवन्तु लोके ॥ ४ ॥
दुष्यन्तभूपश्च शकुन्तला च यथानुरूपौ च मनोऽनुकूलौ ।
नराश्च नार्यश्च तथैव नित्यं गार्हस्थ्यधर्मं खलु धारयन्तु ॥ ५ ॥

उपोद्घातः। कृतयुगादिषु सत्त्वबहुला जन्मप्रभृत्येव पैतृकशुक्र-माहात्म्येन स्वतःसिद्धवैदिककर्मानुष्ठानार्हविग्रहा जगदनुग्रहनिग्र-हशक्तयो महर्षयश्चिरायुष आविरासुः, येषां चरुप्रभृतिसंस्काराः, संख्यया चाष्टाचत्वारिंशदासन्, इदानीं तु जन्मप्रभृत्येव कलिबला-न्निर्बलेन्द्रियाः कर्मानुष्ठानानर्हविग्रहा अनुत्साहा हतभाग्यभाजो दुः-खादर्कजीवनाः सदनुष्ठानान्तरालान्तरायबहुलाः सेवादुर्लभवृत्तयो

दुर्वृत्तयः कृपणचेतनाश्चेतनाः समुत्पद्यन्त इति न कस्यापि परोक्षं प्रेक्षावतः। अत एव तेषां संस्कारा न चरुप्रभृति शास्त्रेणाधुना बोध्यन्ते किन्तु गर्भाधानादय एव, तेऽपि च संख्यया षोडश, परमेतेऽपि सांप्रतं यथाकथंचिदेव कस्यचिदेव च पारम्पर्यायातविद्यस्य यथार्थकुलीनस्य धन्यस्यैव, न तु सर्वस्य, तेऽपि च न यथाकालमिति न बहूपपादनार्हमित्युपरमामः॥

कलावाश्रमान्तराभावनिरूपणम्।

कलावाश्रमान्तराणां निषिद्धतया अतिकष्टसाध्यतया विलुप्तप्रायप्रचारतया च गृहस्थाश्रमस्यैवैकस्य कथंचिद्विद्यमानतया तदवलम्बद्वारस्य वैवाहिकसंस्कारस्य कः काल इदं तु पुनरिह विवेचनीयं, परं तु यथा गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनादिसंस्काराणां कालः सुनिर्णीतो न तथा चातुराश्रम्यमूलभूतस्य सर्वाश्रमसमुद्भूतेः सकलाश्रमविश्रामहेतोर्गृहस्थाश्रमस्य द्वारभूतो यो विवाहस्तस्य निर्णीतः कश्चन कालो, निर्णीतोऽपि वा महर्षिभिरधुना न व्यवहारविषयो लोकानामिति तत्काल एवास्माकं पूर्वाचार्यवचनपर्यालोचनया वर्तमानकालीनव्यवहारबोधकधर्मशास्त्रनिबन्धाविरोधेन निर्णिनीषितः॥

नास्तिकानां शङ्का।

तत्र शीतातपनिवारणनिदानस्य वस्त्रपरिधानातपत्रप्रसारणादेर्लौकिककारणस्य यथा न कश्चन नियतः कालोऽपि तु निमित्ते नैमित्तिकमिति न्यायेन यदैव शीतभीतिघर्मभीती तदैव तदपनयोपायानुष्ठानं तथा यदैव दारसंग्रहणावस्थाऽवाप्तिस्तदैव दारसंग्रहो युक्तः, स्त्रीणामपि च यदा पुंसंबन्धार्हावस्थाप्राप्तिस्तदैव विवाहो युक्तः, अत एव "दारक्रियायोग्यदशं च पुत्रमित्यादिना दारपरिग्रहार्हवयःसंबन्धनिबन्धन एव प्राचीनकालेऽपि अजस्य विवाहः स्मर्यते, न ह्यदृष्टं नाम किञ्चित्तत्वं यत्परवशास्तत्र विवाहकालनिर्णये उदीक्षेमहि धर्मशास्त्रमिति केचिदाधुनिकाः शरीरात्मवादिनः शास्त्र-

पराङ्मुखवृत्तयो धर्मशास्त्रेषु अशक्यानुष्ठाना एवार्था बोध्यन्त इति भ्राम्यन्तस्ततो बिभ्यति अनुतिष्ठन्ति च यथेच्छमाचारं म्लेच्छाननुकुर्वाणा इत्यपरोक्षं मनीषिणाम् ॥

अत्रैवं प्रचक्ष्महे कर्माणि तत्र त्रिविधानि लौकिकानि अलौकिकानि लौकिकालौकिकानि चेति । तत्र केवललौकिकानि पिपासोपशमनानि शीतवारिपानगम्भीरजलाशयसमाश्रयणादीनि, अलौकिकानि गुर्वनुगमनोपनयनसत्तीर्थसेवनादीनि, लौकिकालौकिकानि तु निष्क्रमणान्नप्राशनचूडादीनि कर्माणि, तथैष विवाहोऽपि लौकिकालौकिकः, अत्र हि रतिधर्म्यप्रजोत्पत्तिधर्मानुष्ठानसाधने विवाहे अस्ति रत्यादिलक्षणलौकिकप्रयोजनसाधनत्वमिति लौकिकत्वम्, अस्ति च धर्मानुष्ठानधर्म्यप्रजोत्पत्तिसाधनत्वेनालौकिकत्वमपि । किंच रत्यंशेऽपि रतिमात्रमेव स्वतःप्राप्तं परं तु तत्र विशेषः सर्वोऽपि शास्त्रैकसमधिगम्य एव यथा सामान्यतः क्षुन्निवृत्त्युपायस्य भोजनस्य प्राप्तत्वेऽपि "सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदित" मिति मानवेन द्विरेव न तु त्रिः,सायं प्रातरेव न तु निशीथादौ यदा कदाचिदपि इति परिसंख्यायते एवमत्र असपिण्डत्वासगोत्रत्वासंस्पृष्टमैथुनत्ववराल्पवयस्कत्वभ्रातृमत्त्वकमनीयकान्तिमत्त्वानन्यपूर्वकत्वादयः कन्यागुणाः, सजातीयत्वपुंस्त्वब्रह्मचारित्वकुलीनत्वादयो वरगुणाः शास्त्रेण संख्यायन्ते, एष परं विशेषो यद्वधूवरयोर्गुणेष्वेतेषु केचन गुणा अतिशयमात्रमादधते, केचित्तु विवाहस्वरूपं निष्पादयन्ति यथा कन्याया भ्रातृमत्त्वकमनीयत्वादिकं केवलमतिशयजनकं न तु विवाहस्वरूपनिर्वाहकमपि तेन विनाऽपि विवाहस्वरूपनिष्पत्तेः असपिण्डत्वासगोत्रत्वास्पृष्टमैथुनत्वाजातविवाहसंस्कारत्वादिकं तु विवाहस्वरूपनिर्वाहकं तेन विना वैधविवाहानिष्पत्तेः अत एव सगोत्राया अज्ञानेनोद्वाहे "उद्वाह्य सगोत्रां तु मातृवत्परिपा-

लये" द्विति स्मृत्या सगोत्रायाः परिणये आमरणात्परिपाल्यत्वमात्रमुच्यते, एवमस्पृष्टमैथुनत्वाजातविवाहसंस्कारत्वादिकमपि विवाहस्वरूपनिर्वाहकमेव न तु प्राशस्त्यनिर्वाहकं तत्र प्रमाणं तु धर्मशास्त्रेषु तत्र तत्र द्रष्टव्यम् । एवं कुलीनत्वब्रह्मचारित्वादयो वरगुणाः प्राशस्त्यमात्राधायकाः तैर्विनाऽपि विवाहस्वरूपनिष्पत्तेः । सजातीयत्वपुंस्त्वादिकं तु स्वरूपसंपादकं तेन विना विवाहस्वरूपानिष्पत्तेः असजातीयेन अपुंसा वा जाते विवाहे विवाहस्वरूपानिष्पत्तावपि पुनरनुद्वाह्यत्वं कन्यायाः विवाहस्वरूपोपयोगिकन्यात्वच्युत्येति तु सुप्रसिद्धमेव धर्मशास्त्रग्रन्थेषु "नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ । पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते" इत्यादिवचसां तु वाग्दत्तापरत्वमिति स्वावसरे साधूपपादयिष्यामो ग्रन्थान्तरे इति नेह प्रपञ्चनीयमनवसरे । एवं च दारसंग्रहमात्रस्य रागतः प्राप्तत्वेऽपि एवंगुणावच्छिन्नेन एवंगुणावच्छिन्ना दाराः संग्रहणीया नानेवंविधाः इति विधीयते तत्र चाप्राप्तार्थस्यैव शास्त्रबोध्यतया विशेषणे विधेयत्वं, विशिष्टे विधेयत्वप्रवादस्तु विशेषणोपरागकृत एवेति व्यक्तमेव, एवं च वधूवरयोर्विवाहकालोऽपि वक्ष्यमाणमुनिवचननिचयेन यथाश्रुते बहुधा परिप्राप्नोति तथाऽपि अकाम्य*विवाहबोधकनिखिलर्षिवचनाविरोधसंपत्तये अनुगतं विधित्सितं स्वाभाविकविवाहेच्छोदयसमुत्पत्तिकालीनानृतुकालोपलक्षितवरवयोऽल्पवयस्कत्वमेव बध्वा विवाह्यताप्रयोजकम् । अत्र चेच्छादिभागस्य स्वतःसिद्धतया स्वयमेव प्राप्तत्वेन शास्त्रेणेच्छाया नियन्तुमशक्यत्वेन च न तदंशे शास्त्रस्य विधायकताव्यापारः किन्त्वप्राप्तेंऽशेऽधिकवयस्कत्वाल्पवयस्कत्वादावेव, एवं चेह विशिष्टे विधेयताप्रवादोविशेषणे विधेयत्वतात्पर्यकोऽथवा विशिष्टे विधेयत्वतात्पर्यक इत्युक्तप्रायमेव । एवं चोपकुर्वाणानां कन्यकानां

* सप्ताष्टवर्षाविवाह्यत्वबोधकवचसां काम्यविवाहविधिपरत्वमिति भावः ।

भवत्येव विवाहेच्छा इति तत्कालोपलक्षित ऋतुप्राक्काल एव मुख्यस्तासामुद्वाहकालः स च देशभेदकुलभेदखाद्यभेदव्यक्तिभेदनिबन्धनतयाऽत्यन्तविभिन्नोऽङ्गुलीकृत्य अयमेतावानेवेत्यनुगमय्य सर्वकन्यासाधारणतया निर्देष्टुमशक्योऽपि कालः पूर्वापदर्शितरीत्या वक्तव्य इति नात्यन्तदुर्निर्वचः । पुंसां तु इच्छतामपि यथासंभवमध्ययनसमाप्तेर्वरणीयताप्रयोजकगुणगरिम्णश्च परीक्षणीयतया न यदा कदाचिदपि इच्छामात्रेण विवाहसंभवः, अत एव विवाहसंस्कारात्पूर्वमनुष्ठीयमानः स्नानसंस्कारोऽपि अध्ययनानन्तरमेव अधीत्य स्नायादिति विधीयते । न च ब्रह्मचर्यावलम्बनद्वारभूतस्योपनयनस्येव विवाहसंस्कारो नित्यस्त्रैवर्णिकानामिति इच्छाभागस्तत्र वोढृताऽवच्छेदककुक्षौ निक्षेप्तुमेव न शक्यत इति शङ्क्यम् । आश्रममात्रस्य ब्रह्मचर्यपूर्वकतया ब्रह्मचर्यस्य चोपनयनं विनाऽसंभवेन तस्य नित्यत्वेऽपि गार्हस्थ्यस्यानित्यत्वेन तद्द्वारस्य संस्कारभूतस्य विवाहस्याप्यनित्यत्वात् । अत एव तु नैष्ठिकोपकुर्वाणभेदेन ब्रह्मचर्यस्य द्वैविध्यमपि शास्त्रसंमतं युज्यते ऽन्यथा तु नैष्ठिकानां विवाहाभावे प्रत्यवाय एव स्यात्, स्याच्च "यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजे" दिति श्रुतिबोधितवैराग्यमात्रनिमित्तकस्य संन्यासस्य ब्रह्मचर्यानन्तरमेवावलम्बने अवैधताप्रसङ्गः । न चापत्यान्यनुत्पाद्य न्यासावलम्बने प्रत्यवायश्रवणात् विवाहानन्तरमेव संन्यास इति भ्रमितव्यम् । तस्यानुत्कटवैराग्यवत्पुरुषपरत्वेन पूर्वोदितन्यासावलम्बननिमित्तश्रुतिचोदितोत्कटवैराग्यभाजामपत्योत्पादनस्याविहितत्वेन विधातुमशक्यत्वेन च तथा शङ्कितुमप्ययुक्तत्वात् । यदपि त्रयाणामानुलोम्यं स्यात् प्रातिलोम्यं न विद्यते । प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात्पापकृत्तमः" इति दक्षवचनं तदपि ब्रह्मचर्यानन्तराणां गृहस्थवानप्रस्थसंन्यासानां त्रयाणामाश्रमाणामानुलोम्यविधायकम्,

आनुलोम्यं च क्रमस्तथा च गार्हस्थ्यानन्तरं वानप्रस्थाश्रमावलम्ब-स्तदनन्तरं च न्यासावलम्बो न तु न्यासाश्रममवलम्ब्य पूर्वयोर्गृहस्थवानप्रस्थयोरवलम्बः वानप्रस्थमवलम्ब्य वा गृहस्थावलम्ब इत्येतत्परं न तु ब्रह्मचर्यानन्तरं गार्हस्थ्यमेवावलम्बनीयमित्येतदर्थकम्। ब्रह्मचर्यस्य यावदाश्रमपरिग्रहमूलतया सर्वाश्रमोपजीव्यत्वेन त्रयाणामिति पदेन तत्परिग्रहस्य संभवेऽप्यव्यावर्तकत्वात्। अस्तु वा त्रयाणामिति पदेन ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थानामानुलोम्यविधानं तावताऽपि साधारणपुरुषानुद्दिश्य तेषामेव क्रमिकत्वं सिध्यति न तु विवाह एव ब्रह्मचर्यानन्तरमनुष्ठेयो नाश्रमान्तरमपीति "ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वा वनाद्वे" ति जाबालश्रुतौ ब्रह्मचर्यानन्तरमपि संन्यासस्योक्तत्वात्। किंच नित्ये कर्मणि शुचितत्कालजीविनोऽधिकारित्वात्समये यथा उपनयनाभावे प्रत्यवायस्तथा विवाहस्य नित्यत्वाङ्गीकारे तदभावेऽपि स्यात्प्रत्यवाय इति नैष्ठिकब्रह्मचर्यमेव लुप्येत। किंच विवाहविधिर्नापूर्वविधिः स्वत एव स्त्रीपुंससाधारण्येन लोकानां विवाहे रागेणाप्राप्तत्वविरहात्। अत एव "श्येनेनाभिचरन् यजेते" त्यादावपि श्येनो न विधीयते किन्तु तस्याभिचारसाधनतामात्रं तस्यैवाप्राप्तत्वादिति शास्त्रतात्पर्यविदः। नापि विवाहविधिर्नियमविधिरित्यपि साम्प्रतं विवाहे नियमतो रागेण पक्षे प्राप्तिविरहरूपस्य नियमविधित्वाङ्गीकारबीजस्य विरहे तस्य नियमविधित्वासंभवात्, किन्तु परिसंख्याविधिरेव। अत एव तु "लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना। व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा" इति, श्रीमद्भागवतश्लोके विवाहविधेर्नियमविधित्वाद्यसंभवात्परिसंख्याविधित्वाश्रयणं तदर्थविदाम्। एवं च सामान्यतो मैथुनस्य प्राप्तत्वात् कृतसंस्कारसगोत्रस्पृष्टपूर्वाद्या दारा न करणीया इत्ययमंशो विधित्सित इति चेष्टाशते-

नापि विवाहविधिर्नोपूर्वो नापि नित्य इति शक्यते वक्तुमिति विवाहे इच्छैव नियामिका ॥

किंच "अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा । दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह" इति मनुस्मृत्या रत्यपत्यधर्मकार्यार्थतया अपत्यकामनावान् विवहेत् धर्मकामनावान् विवहेत् रतिकामनावांश्च विवहेदिति स्वमूलभूतं श्रुतिचयं कल्पनीयमेकैककामनावतोऽपि तत्र प्रवृत्तेस्तथा सत्येव चानग्निकानामप्यास्तिकानां विवाहप्रवृत्तिर्निर्वहति इतरथा तु कामनाचितयवत एव तत्र प्रवृत्तेर्वक्तव्यतया अतथाभूता आस्तिका विवाहादुपरमेयुः, एवं च विवाहो यथा पुंसां काम्यः एवं विवाहकर्मीभूतानां स्त्रीणामपि न स नित्यो भवितुमर्हति एकस्यैव तस्य मन्त्रकरणकपरिग्रहलक्षणस्य सप्तपद्यन्तसंस्कारकर्मणः स्त्रीपुंसभेदेन कर्तृकर्मस्वरूपस्य एकत्र काम्यस्यापरत्र नित्यत्वासंभवात् । न चापत्योत्पादनस्य नित्यत्वेन तद्द्वारभूतो विवाहोऽपि नित्य इति वाच्यं गृहस्थस्य सतः पुत्रोत्पादनस्य नित्यत्वे ऽपि वर्णिनस्तस्य नित्यत्वविरहात्, अन्यथा चातुराश्रम्यविलोपप्रसङ्गः ॥

न चैवं कदाचित्पण्डवृद्धादीनामपीच्छासत्त्वे विवाहः स्यादिति शङ्क्यम् विवाहस्यैच्छिकत्वेऽपि रतिधर्म्यप्रजोत्पादनार्थत्वात् "सर्वेषामेव वर्णानां दारा रक्ष्यतमा मताः" इति, मनुना रक्ष्यतमत्वाभिधानाच्च प्रजोत्पादनदारसंरक्षणयोश्च वृद्धस्य कष्टसाध्यतया तस्येच्छासत्त्वेऽप्यनधिकारित्वात् । पण्डस्य तु पूर्वयुगे नियोगविधेर्धर्म्यत्वेन आसीदेव दारसंग्रहः "यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्पण्डादीनां कथंचन" इत्यादिना धर्मशास्त्रेण इच्छासत्त्वे तेषामपि दारयोगस्याम्नातत्वात्, अयं पुनर्विशेषो यत्कलौ नियोगः प्रतिषिद्ध इतीच्छतोऽपि तत्र पण्डस्य प्रजोत्पादनधर्मविरहान्न विवाहो धर्म्यः

प्रत्युत यस्य विवाहो नित्यस्तस्यैव पण्डवृद्धविवाहप्रसङ्गो दुर्वारो धर्म्यप्रजोत्पादनसामर्थ्यविरहेऽपि नित्यत्वेन तदनुष्ठाने वृद्धादिप्रवृत्तेरप्यावश्यकत्वात् । या च तरुणस्य मृतपत्नीकस्य पुनर्विवाहावश्यकता सेयं न विवाहविधेर्नित्यत्वेन किन्तु पत्नीमरणे विधुरस्यानाश्रमिणः "अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु क्षणमेकमपि द्विजः" इति स्मृत्या अनाश्रमावस्थानस्यानिष्टसाधनत्वेन केवलमाश्रमावलम्बनायैव इतरथा तु गर्भाधानन्यायेन "सकृदेव हि शास्त्रार्थः कृतोऽयं तारयेन्नर" मिति सिद्धान्तात्त्वदुक्तरीत्या विवाहविधेर्नित्यत्वाङ्गीकारेऽपि सकृदनुष्ठानेन कृतार्थतया पुनर्विवाहप्रवृत्तिर्न स्यादेवेत्यलमनल्पजल्पनेन । अथ पुरुषाणां विवाहस्यैच्छिकत्वेऽपि स्त्रीणां विवाहो नित्य एव स्त्रीणां विवाहसंस्कारस्य पुंसामुपनयनस्थानीयत्वात् अतएव विवाहात्पूर्वं कन्यकानां स्पृष्टं जलपाकादि शिष्टा न स्वीकुर्वन्तीति प्रसिद्धमेव, युक्तं चैतत् "अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्द्ध्वं रजस्वला ॥ माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् । विवाहोऽष्टमवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते" इति संवर्त्तेन "प्रदानं प्रागृतोः स्मृत"मिति मनुना, "प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति । मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिबति शोणित"मिति यमेन च अष्टमादिवर्षाया उद्वाह्यत्वस्य धर्म्यत्वाभिधानात् । कलिधर्मनिरूपणैदम्पर्येण प्रवृत्तायां पाराशर्यामपि "अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा तु रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्द्ध्वं रजस्वला ॥ प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति" इति स्फुटमेव दशत ऊर्द्ध्वं दातुः प्रत्यवायश्रवणात् कन्यकायाश्च रजस्वलात्वदोषदूषितत्वेनाविवाह्यत्वसूचनादिति चेत् सत्यं को ब्रूते रजस्वलोद्वाह्येति किन्तु योऽयम-

ष्टमादिवर्षाया विवाहविधिः सोऽयं नापूर्वः किन्तु परिसंख्या, न च स्त्रीणामपि विवाहविधिर्नित्यः किन्त्वैच्छिकः यश्चाष्टमवर्षाया विवाहः स्मृतिषूक्तः, स तु काम्य इति ब्रूमहे, तच्चेत्थम्, यथा पुंसां स्त्रीपरिग्रहणं स्वतःप्राप्तमिति न तद्विधेयं किन्तु तत्त्यो विशेष एव विधित्सितः, परिग्रहणांशे तु सर्वतः प्राप्तः परिग्रहो वैवाहिकदारेषु परिसंख्यायते एवं स्त्रीणामपि पत्यवलम्बनं रागतः प्राप्तमिति न तद्विधित्सितं किन्तु स्वसजातीयत्वस्वाधिकवयस्कत्वादिलक्षणो विशेष एवापूर्वत्वाद्विधित्सितो विवाहस्वरूपांशे तु सर्वपुरुषपरिग्रहस्य प्राप्तत्वात्परिसंख्यैव, इयांस्तु विशेषो यत्स्वीकार्यत्वेन ज्ञानलक्षणस्य विवाहस्य कर्ता पुरुषो, न स्त्री, कर्तृत्वं च स्वीकार्यत्वेन ज्ञानाश्रयत्वलक्षणमेव, स्त्रियास्तु धात्वर्थतावच्छेदकीभूतस्वीकार्यत्वलक्षणफलाश्रयतया कर्मत्वमेव न तु कर्तृत्वमपि, अतः स्त्रियमुद्वहते पतिरितिवत् स्त्री पतिमुद्वहते इति न प्रामाणिको व्यवहारः एवं च विधेः पुरुषावलम्बनबोधने व्यापारासंभवात्परिसंख्यैवेति साधु समर्थितं भवति । न च माभूत्परिग्रहांशे विधेरपूर्वत्वं तथाऽप्यप्राप्ते कन्यकाया अष्टमवर्षवयस्कत्वांशे अपूर्वविधित्वमिति तच्च नित्यत्वमपि, कालोल्लङ्घने प्रत्यवायश्रवणादिति वाच्यम् । यतो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्चेति कन्यकानामपि ब्रह्मचर्यमाम्नायते अत एव हारीतादिस्मृतावपि तादृशो विभागः ।

कुमारीणामपि ब्रह्मचर्यम् ।

अत एव देवीभागवते पञ्चमस्कन्धे सप्तदशेऽध्याये मन्दोदर्युपाख्याने दशवर्षां तामुपलक्ष्य तव पिता कम्बुग्रीवेण सह तव विवाहं कर्तुमिच्छतीति मातुरभिधाने मन्दोदर्युवाच "नाहं पतिं करिष्यामि नेच्छा मेऽस्ति परिग्रहे । कौमारं व्रतमास्थाय कालं नेष्यामि सर्वथा । स्वातन्त्र्येण चरिष्यामि तपस्तीव्रं सदैव हि । पारतन्त्र्यं परं दुःखं मातः संसारसागरे ॥ एवं प्रोक्ता तदा

माता पतिं प्राह नृपात्मजा ॥ न च वाञ्छति भर्तारं कौमारव्रतधारिणी । व्रतजाप्यपरा नित्यं संसाराद्विमुखी सदा ॥ न काङ्क्षति पतिं कर्तुं बहुदोषविचक्षणा । भार्याया भाषितं श्रुत्वा तथैव संस्थितो नृपः ॥ विवाहो न कृतः पुत्र्या ज्ञात्वा भावविवर्जिताम् । वर्तमाना गृहेष्वेवं पित्रा मात्रा च रक्षिता" ॥ इति, स्पष्टमिदमेतेन यत्पुंसामिव स्त्रीणामपि नैष्ठिकब्रह्मचर्यवत्त्वं शास्त्रानुमतम् इति, एवमेव श्रीमद्भागवते चतुर्थस्कन्धे प्रथमेऽध्याये "तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा । उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे" ॥ इति, अत्र "सनकादिवदूर्द्ध्वरेतस्के इति भावः" इति वीरराघवः स्वटीकायां, "तयोस्तु संततिर्नाभूज्जीवन्मुक्तत्वा" दिति तु श्रीधरः प्राह स्म, ततश्च स्त्रियोऽपि ब्रह्मवादिन्यो नैष्ठिकब्रह्मचर्यवत्यश्चेत्यतिपुष्कलम् । एवं चैच्छिक एव स्त्रीणामुद्वाह इति सिध्यति । न च कलौ पुंसामेव दीर्घकालब्रह्मचर्यस्य "दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं कमण्डलुविधारणम्" इति । कलिवर्ज्यप्रकरणोक्ततया प्रतिषिद्धत्वात् स्त्रीणां ब्रह्मचर्यकथाप्रस्तावो लोकशास्त्रानभिज्ञानामेव शोभतां निरुक्तदृष्टान्तजातं च युगान्तरपरम्, अतएव "पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा । पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्परः । स्वगृहे चैव कन्याया भैक्षचर्या विधीयते । वर्जयेदजिनं चीरं जटाधारणमेव च । इति यमेन स्त्रीब्रह्मचर्यस्य युगान्तरपरत्वमुक्तमिति सर्वमिदमस्थाने साहसमात्रमिति वाच्यम् । यतः स्त्रीभिर्ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयमिति केनोच्यते तत्रापि च कलौ यत्र योगिनामपि दुःसंभवं ब्रह्मचर्यं तत्र स्त्रीणां ब्रह्मचर्यं कूर्मरोमायितमेव, वयं हि पुंसामिव स्त्रीणामपि विवाहोऽनिच्छया न कार्यः सा चेच्छा नाष्टमादिवर्षाया इति कथंचिदपि ज्ञातविवाहसाराया अरजस्वलाया विवाहः कार्य इति साधयितुं प्रवृत्ताः, तदर्थमेव च देवी-

भागवतश्रीमद्भागवतादिप्रामाणिकग्रन्थद्वारा स्त्रीणां ब्रह्मचर्यव्रतावलम्बननिदर्शनं न तु स्त्रीभिर्नैष्ठिकब्रह्मचर्यव्रतमनुष्ठेयं कलाविति साधयितुं प्रयतामहे। ब्रह्मचर्यस्य च विवाहे विशेषाधायकत्वम् दम्पत्योरुभयोरपि "अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्। अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्" इत्यादियाज्ञवल्क्यस्मृतिप्रतिपन्नमेव, ब्रह्मचर्यं च सर्वयुगसाधारण्येन स्त्रीणामपेक्षितं भवति अत एव वर्त्तमाने कलावपि व्यवहृतेषु गृह्यसूत्रेषु विवाहानन्तरमपि किंचित्कालं गौणं ब्रह्मचर्यानुष्ठानमुच्यते यथाह कात्यायनः "अक्षारालवणाशिनौ स्यातामधः शयीयातां संवत्सरं न मिथुनमुपेयातां द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्तत इति, एवमापस्तम्बगृह्यसूत्रे "अक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणावलङ्कुर्वाणावधःशायिनौ स्याताम्, अत ऊर्द्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रम्, संवत्सरं चैक ऋषिर्जायते," इति, आश्वलायनगृह्येऽपि "अक्षारालवणाशिनौ ब्रह्मचारिणावलङ्कुर्वाणावधःशायिनौ स्यातामत ऊर्द्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं संवत्सरं वैक ऋषिर्जायत"-इति, ततश्चैतावानेव विशेषो यद्युगान्तरे नारीणामपि दीर्घकालब्रह्मचर्यं नैष्ठिकब्रह्मचर्यमपि च वैधमभवत्, अधुना तु यौवनोद्गमादर्वागेव न तु परमपि "बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षती" ति न्यायेन तस्यातिदुष्करत्वादिति निरुक्तगृह्यसूत्रकलापेन स्त्रीणामपि विवाहो नातिबालानामिति सुस्पष्टम्। न चैतैर्गृह्यसूत्रैर्द्वादशरात्रषड्रात्रत्रिरात्रादिब्रह्मचर्यं बोध्यत इति तावता नातिबालाया अविवाह्यत्वसिद्धिः, अतिबालामष्टनववर्षामुद्वाह्यापि तावन्मात्रं पूर्वोदितगृह्यसूत्रानुसारिब्रह्मचर्यमनुष्ठाय पुंसंपर्कसंभवादिति शक्यं शङ्कितुमपि "प्राग्रजोदर्शनात्पत्नीं नेयाद्गत्वा पतत्यधः। व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुया" दित्याश्वलायनेन रजोदर्शनात्पूर्वं स्त्रीणामगम्यत्वस्यातिदोषप्रदर्शनपुरस्कारेणोक्तत्वादतः कन्यानां रजोदर्शनेन अनुद्वाह्य-

ताप्रयोजकाशुद्धेः शास्त्रेपूक्तत्वाद्रजोदर्शनपूर्वो यौवनोद्भेदपूर्वकालः स्त्रीणामकाम्यो विवाहकालः, अष्टमनवमाब्दकालस्तु दातुः पित्रादेर्नागलोगवैकुण्ठस्वर्गपृष्ठादिगमनकाम्यया प्रतिग्रहीतृदात्रोरुभयोरेव वा फलविशेषकामनया, यथोक्तं विष्णुपुराणे तृतीयेंऽशे श्राद्धकल्पे षोडशाध्याये "गौरीं वाप्युद्वहेद् भार्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत्। यजेत वाऽश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणावता" इति, १६ "गौरीं ददन्नाकपृष्ठ"-मित्यादिवचनस्वरससिद्धमेवेत्यतिस्फुटमिति न बहूपपादनार्हम्। ततश्च यथोपनयनस्य मुख्यो गर्भाष्टमोऽष्टमो वाऽब्दः, "नवमे तेजस्कामः" इत्यापस्तम्बो नवमादिः "ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यो विप्रस्य पञ्चमे" इति मनुना चोक्तः पुनरुपनयनकालो न नित्यः किन्तु काम्यः एवमिह सप्तमाष्टमवर्षकालादिः काम्यः, अतएव तु पराशरमाधवे द्वितीयाध्याये "वयोविशेषेण दातुः फलविशेषमाह मरीचिः—गौरीं ददन्नाकपृष्ठं वैकुण्ठं रोहिणीं ददत्। कन्यां ददद् ब्रह्मलोकं रौरवं तु रजस्वलाम्" इति ब्रुवन्तो माधवाचार्याः स्फुटं गौर्यादिदानस्य काम्यत्वमनुमेनिरे॥ रजस्वलादानमपि च सर्वथानिरयहेतुः, षडब्दन्यूनस्तु निषिद्धः, यथोक्तं ज्योतिर्निबन्धे "षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्या वर्षद्वयं यतः। सोमो भुङ्क्ते ततस्तद्वद् गन्धर्वश्च तथाऽनलः" इति। ऋतुपूर्वकालस्तु मुख्यः, ऋत्वनन्तरकालस्तु आपद्येव, सा च उत्तमवरासंनिधानहेतुका दात्रसंनिधानहेतुका चेत्येवमनेकधा, तत्र नैष्ठिकब्रह्मचर्यमनुष्ठातुमपारयन्ती उपकुर्वाणा योग्यवरोदीक्षणपरा वा वृथाकालमतिवाहयन्ती कन्यैव यदि जातेऽपि ऋतौ स्वातन्त्र्यभङ्गभीत्या विवाहकालमतिपातयेत्तर्हि सैव दुष्यति यथोक्तं महाभारते आनुशासनिके "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कन्या ऋतुमती सती। चतुर्थे त्वथ संप्राप्ते स्वयं भर्तारमर्जयेत्"॥ प्रजा न हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ। अतोऽन्यथा वर्तमाना भवेद्वाच्या

प्रजापते: ॥ इति, युक्तं चैतत् स्त्रीरजसो जगत्प्रतानानिदानतयैव धात्रा विसृष्टत्वेन तस्य व्यर्थीकारे संतानवधप्रत्यवायपरिप्राप्तेः स्फुटत्वात्। उत्तमवरप्राप्तौ तु प्राप्तवयस्कां कन्यामप्रददत: पित्रादय एव प्रत्यवायभाजो भवन्ति, यथोक्तं वसिष्ठसंहितायां " यावच्च कन्यामृतव: स्पृशन्ति तुल्यैः सकामामभियाच्यमानाम् । भ्रूणानि तावन्ति हतानि ताभ्यां मातापितृभ्यामिति धर्मवाद: " तुल्यैर्जातिवयोरूपयौवनशान्तिशीलादिगुणैस्समाना ये वरास्तैर्याच्यमानां सकामां सतीं कन्यकां यदि निजगेहकृत्यादिभङ्गभीत्या वा वृथास्नेहपरवशतया दानाधिकारिणो न दद्युस्तर्हि त एव प्रत्यवायभाज: ॥

अतिबालिकाया एव विवाहो धर्म्य इति भाम्यतां, मतम् ।

यत्तु त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् । त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वर: " ॥ म० श्लो० ९४ । इति वचनेनानुमन्यते ऽष्टवर्षाया एव विवाहोमनुना, द्वादशवर्षाविवाहस्तु आपदि, भवति चायमर्थोऽनुप्राणित: " अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी। दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्द्धं रजस्वले " त्यादिवचनकलापेन, वर्त्तमानेनासेतुहेमाचलमकुण्ठप्रचारेण शिष्टाचारेण चानुमत इति न कश्चिदिहावद्यसंबन्धगन्धोऽपि, एवमेव च " दद्याद् गुणवते कन्यां नग्निकां ब्रह्मचारिणे । अपि वा गुणहीनाय नोपरुन्ध्याद्रजस्वलाम् " इति बौधायनादिवचनान्यनुगृह्यन्ते इति ।

मनुमर्मार्थनिरूपणं पराभिमतम् ।

तदप्येतत्तातस्य कूपोऽयमिति न्यायार्थमेवानुरुन्द्धे, विरुन्द्धे च सर्वथा यथार्थमर्थं तथा हि त्रिंशद्वर्षस्य धैर्यशालिनो ब्रह्मचर्येण विधिवदधीतवेदस्य द्वादशवर्षवयस्कहृद्यानवद्यकन्यकयोद्वाहमभिधाय विद्युच्चलं जीवितमसारबहुल: संसारो विघ्नबहुलानि श्रेयांसि प्रत्यूहव्यूहबाधिता: सर्वा: समृद्धयो लौकिक्य इति यदेव अनुतिष्ठेयं तदेव मे लोकद्वयसाधनाय पर्याप्नुयादिति भृशं मीमांसमानस्य वैदि-

कधर्मानुष्ठाने कालविलम्बमसोढवतः चतुर्विंशत्यैव वर्षाणां परिसमापिताध्ययनस्योपकुर्वाणस्य गार्हस्थ्यधर्मानुष्ठानप्रयासस्य विवाहस्तु कदा कीदृश्या चेत्याह त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वेति, त्र्यष्टवर्षः चतुर्विंशतिवर्षवयस्क इत्यर्थः । अष्टवर्षाम्—षोडशवर्षवयस्कामित्यर्थः, स चायमर्थः—अष्टौ च अष्टौ चेत्यष्टौ इत्येकशेषेण लभ्यस्तत्र प्रमाणं तु "त्रिंशद्वर्षः षोडशवर्षां भार्यां विन्देत नग्निकाम्" इति महाभारतीयमुद्वाहतत्त्वे रघुनन्दनधृतं षोडशवर्षवयस्ककन्यकायाः कण्ठत उद्वाह्यत्ववचनमत एव इहैव धर्मे सीदति सत्वरः—इति मनुना गर्भाधानाग्न्याधानादिरूपे गृहस्थसाध्ये धर्मे सीदति विनाशमुपेयुषि सत्वरः—तदनुष्ठानाय तदौपयिके दारपरिग्रहे त्वरासहितः प्राप्तगर्भाधानवयस्कया प्रौढयौवनया कन्यया कृतविवाहः । अत्र धर्मपदेन गर्भाधानरूपो धर्मो मुख्यतया जिघृक्षितः, अत एव "प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थं च मानवाः । तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः" इति वचनेन मनुना गर्भाधानस्य गृहस्थधर्मतामभिधाय तद्दृष्टान्तेन अग्न्याधानस्य गृहस्थधर्मताऽभिहिता ।

कुल्लूकभट्टस्यानुमतिप्रदर्शनम् । कुल्लूकभट्टोऽपि च "यस्माद् गर्भग्रहणार्थं स्त्रियः सृष्टाः गर्भाधानार्थं च मनुष्याः, तस्माद् गर्भोत्पादनमिवानयोरग्न्याधानादिरपि धर्मः पत्न्या सह साधारणः" इत्यभिदधौ, एतेन मनूक्तस्य द्वादशवर्षाविवाहस्य ब्राह्मणेतरवर्णपरत्वमथवा युगान्तरपरत्वं कलिधर्मनिरूपणैदम्पर्येण प्रवृत्तासाधारणधर्मपरपराशरस्मृत्यनुरोधाद्, अथवा रत्यर्थमात्रप्रवृत्तपुरुषविवाहपरत्वं ब्राह्मविवाहेतरविवाहपरत्वं वा, इहैव "त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वेति अनास्थार्थकवाकारेण तादृशार्थस्य सूचनादित्यनिपुणभणितमनादरणीयम्, पूर्वोत्तरप्रकरणानुग्रहेण प्रजोत्पादनाग्निहोत्रलक्षणधर्मानुष्ठानौपयिकधर्म्यविवाहविधिपरस्यास्य वचसो युगान्तरपरताया ब्राह्मणेतरवर्णपरताया रत्यर्थप्रवृ-

त्तपुंपरतायाश्च शङ्कितुमप्यशक्यत्वात् । धर्मे सीदति सत्वर इति सहेतुकाष्टवर्षाविवाह्यतापरस्यामुष्य वचसोऽनास्थार्थकवाकारघटितत्वासंभवाच्च विवाहस्य रत्यपत्याद्यर्थतया अतिबालिकायाश्चोक्तार्थानुपयोगिन्याः सर्वथा विवाह्यत्वस्य मनुतात्पर्याविषयत्वात् ।

एकादिनवान्तानां द्वन्द्वैकशेषो नेत्यपि नास्मदुक्तैकशेषविरोधि तस्यानभिधानमूलत्वेन अनभिधानस्थल एव तस्यासाधुत्वबोधकत्वेन भारतब्रह्मपुराणादिपरमप्रामाणिकार्षग्रन्थोदितत्वेन व्यवस्थापितस्य द्वादशवर्षा–षोडषवर्षाष्टादश* वर्षा–विंशतिवर्षाविवाह्यत्वस्याथाऽनुपपत्त्यैव प्रकृते द्वि-नव-दशादिशब्दानामेकशेषसाधुताया अवश्यमाश्रयणीयत्वात् ।

एकादिनवान्तानां द्वन्द्वैकशेषयोरभियुक्तोक्तिमुपष्टम्भाति ।

अत एव तु शब्दशक्तिप्रकाशिकायां जगदीशतर्कालङ्काराः–एकशेषप्रकरणे "एकश्चैका चेत्यत्र एकौ द्वौ च द्वे चेत्यत्र द्वे, उभे चोभौ चेत्यत्र† उभे, त्रयश्च, तिस्रश्चेत्यत्र च विग्रहे यत्र इत्येकशेष इष्यत एवे" त्याहुः । न चात्र स्त्रीपुंसयोरेवैकशेषदर्शनेन अष्टौ चाष्टौ चेत्याद्यतथाभूतैकशेषे नैतस्य प्रमाणाभावसिद्धिरित्यतितुच्छं शङ्कनीयम्, एकादिनवान्तानां द्वन्द्वैकशेषौ नानभिधानादिति नियमोल्लङ्घनस्य तावताऽपि त्वयाङ्गीकर्तव्यत्वेन तत एवास्मदभिप्रेतार्थसिद्धेः, न च एकद्वित्रिचतुःपञ्चभ्य इत्यादिप्रामाणिकप्रयोगदर्शनात् संख्यावाचकशब्दानां नैकान्तिको द्वन्द्वैकशेषानभ्युपगमः परन्तु समासघटकैकद्व्यादिशब्दानां संकलितसंख्याबुबोधयिषयैव प्रयोगानङ्गीकारः ततश्चेह पञ्चदशत्वावच्छिन्नबुबोधयिषया एकद्वित्रिचतुःपञ्चभ्य इत्यप्रयोगेऽपि प्रत्येकमेकत्वद्वित्वाद्यवच्छिन्नबोधतात्पर्येण

* आपत्कालिकविवाहपरत्वम् ।

† उभशब्दस्य बहुवचनान्तत्वं जगदीशेन कथमुक्तमिति तु टीकायां साधु समर्थयिष्यते ।

तथा प्रयोगः संभवतीति प्रकृते अष्टौ च अष्टौ चेति विगृह्य संकलितषोडशत्वावच्छिन्नबोधतात्पर्येण न तथा प्रयोगयोग इति वाच्यं यत एकादिनवान्तानां द्वन्द्वैकशेषाविति न वचनभावेन प्रामाणिको नियमः परमनाकाङ्क्षितत्वबोधकत्वेन संकलितसंख्यातात्पर्येणोच्चारितस्य एकद्वित्रिचतुःपञ्चभ्यः इति द्वन्द्वस्य त्रयश्च तिस्रश्चेति विगृह्य त्रय इत्येकशेषस्य वा न पञ्चदशत्वावच्छिन्नबोधकत्वं षट्त्वावच्छिन्नबोधकत्वं वेत्यर्थत एव तथा नियमादरस्ततश्च, यथा शब्दशक्तिप्रकाशिकास्थस्य त्रयश्च तिस्रश्चेति विगृह्य कृतैकशेषस्य स्त्रीपुंसब्राह्मणत्रयतात्पर्येण प्रयुक्तस्य त्रयो ब्राह्मणाः सन्तीति वाक्यस्य त्रिकद्विकबोधकत्वं प्रकरणादिनाऽङ्गीकरणीयं तथैव मदभिहितस्य अष्टौ चाष्टौ चेत्येतस्य कृतैकशेषस्याष्टद्विकबोधकत्वमपि मनुमहाभारतब्रह्मपुराणादिप्रामाण्योपबृंहणेन साधु समर्थितं भवति, एवं च निरुक्तवाक्यैकवाक्यतापन्नस्य "अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणीत्यादिवाक्यस्यापि संकलिताष्टद्विकबोधकत्वाभिधानमपि नापराधायेति कृतधिय एवावधारयन्तु तात्पर्यग्राहकवचनान्तरोपबृंहणस्योभयत्र समानत्वात्, अस्तु वा त्रयश्च तिस्रश्चेति त्रय इति स्थले त्रिकद्विकबोधवदेव इहापि अष्टद्विकबोधद्वारैव षोडशबोधो न तु षोडशत्वावच्छिन्नबोधस्तथाऽपि न नः क्षतिर्बुबोधयिषितस्य षोडशादेर्निरुक्तरीत्यैव बोधनिर्वाहसंभवात् ।

पुंसां यौवने एव स्त्रीसंपर्को न तु बाल्ये ।

अत एव सुश्रुतेऽपि च "ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् । यद्याधत्ते पुमान् गर्भं गर्भस्थः स विपद्यते जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ॥ तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्" इत्युक्तं, न च षोडशवर्षाया अनृतोर्विवाहस्य शास्त्रीयत्वमिति बोधयतो निरुक्तसुश्रुतवाक्योपष्टम्भदानं कर्णस्पर्शे कटिचालनायितमित्यन्तहासास्पदं, न हि गर्भाधान-

विवाहयोरैक्यं, ततश्च गर्भवयोबोधकं विवाहसमयबोधकमिति साधु धर्मशास्त्रकदर्थनमिति वाच्यम् यतो धर्मशास्त्रवैद्यकशास्त्रयोः शुक्रस्येव शोणितसाफल्यस्यासकृदभिहितत्वाच्छोणितसाफल्यस्य च गर्भग्रहणेनैव वक्तव्यतया ऊनषोडशवर्षायाश्च गर्भधारणानुपयुक्ततां गमयताऽनेन पुष्पसंभवोऽपि न ततः पूर्वं भवतीत्यवगम्यते, एवं च षोडशवर्षाऽप्यनार्तुरिति सुश्रुतादवगन्तुं शक्यमिति तदुपन्यासस्य युक्तत्वं, न च सुश्रुते शारीरस्थाने द्वादशाब्दमारभ्य ऋतुसंभवाभिधानान्नैतदपि साधु इति भ्रमितव्यं देशभेदेन ऋतुसमयस्य भिन्नतया तादृशविरोधस्य सुपरिहरत्वात्, न चेदमर्थशास्त्रमिति न धर्मविचारौपयिकमन्यथा चरकसुश्रुतादौ मद्यगुणानां बहुधोपवर्णनान्मद्यस्याप्यादेयताप्रसङ्ग इति वाच्यम् धर्मानुष्ठानयोग्यविग्रहवतीनां चिरजीविनीनानामेव सन्ततीनामुत्पिपादयिषितत्वेन तासां चापूर्णयौवनासु भार्यासु अनुद्भुतयौवनेन गर्भाधाने उत्पादयितुमशक्यतया अस्य अर्थशास्त्रत्वेऽपि ज्वरी न स्नायादिति शास्त्राणामिव धर्मशास्त्रताया अप्यावश्यकत्वात् । किंच चरकसुश्रुताद्यर्थशास्त्रेषु मद्यादिगुणवर्णनस्थले मद्यपानजन्यपुष्ट्यादिकमेव वर्ण्यते न तु तदपाने कश्चित् शारीरक्लेशः । गव्यपयोनवनीतादिनाऽपि तादृशविशेषस्यास्तिकैः संपादयितुं शक्यत्वात् । अत्र तु स्फुटमेव ऊनषोडशवर्षायामपूर्णयौवनेन गर्भग्राहणे गर्भस्थजन्तोर्गर्भधारकमातवयवानां संकुचितत्वेन पीडातिशयो, जातस्यापि चिरजीवित्वाभावो जीवतोऽपि च विकलेन्द्रियत्वमुक्तमिति को नामैतस्य धर्मशास्त्रविरुद्धार्थशास्त्रतां वक्तुमुत्सहेतापि विज्ञः । एवमेव तु कदाचिद् धर्मशास्त्रेष्वपि दिवामैथुनादेरपत्याल्पायुष्कत्वादिनिदानत्वेन निषेध उपपद्यते । तद्यथा "दिवा मैथुनं व्रजेत् क्लीबा अल्पवीर्याः अल्पायुषाश्च प्रसूयन्ते तस्मादेतद्वर्जयेत्प्रजाकामो गृही श्रुतिस्मृतिविरो-

धाभ्याम् " इत्याह स्म पारस्करः प्रथमकाण्डे चयोदशकण्डिकायाम् । तदिदमूनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिमित्यस्य निरुक्तकातीयवद्धर्मशास्त्रत्वमर्थशास्त्रस्य सतोऽपि सुपुष्कलमित्यविकलम् । न च निरुक्तभारतवचने त्रिंशद्वर्षस्य षोडवर्षया विवाह उक्त इति चतुर्विंशतिवर्षस्य " पुरुषस्य विवाहप्रसङ्गे न तस्य षोडशवर्षवयस्ककन्यकयोद्वाह्यतासाधकत्वाभिधानं युक्तमत्र त्रिंशदपेक्षया पुरुषस्याल्पवयस्कत्वे भारतब्रह्मपुराणाद्युक्तस्य स्त्रीवयसोऽपि न्यूनीकरणमुचितमिति न तस्य मानवार्थे अष्टवर्षापदस्य षोडशवर्षार्थकत्वसंपादनायोपन्यासो युक्त इति वाच्यम्, न हि मानवार्थोपष्टम्भकतया भारतवचनोपन्यासः सर्वथा सादृश्येन किन्तु विवाहे त्वरमाणस्य यूनो गार्हस्थ्यधर्मनिर्वाहो मनोरभिमतो न निर्वोढुं शक्यः षोडशवर्षामनुद्वाह्येति षोडशवर्षाया विवाह्यत्वमन्यतः सिद्धं दृष्टान्तीक्रियते इतरथा तु " धर्मे सीदति सत्वरः " इति मनूक्तिकदर्थनैवापद्येत न ह्यष्टवर्षां द्वादशवर्षामपि वोद्वाह्य धर्म्यप्रजोत्पादनेन पैतृर्णापाकरणं त्वरया संभवति । भवितव्यं च पूर्वकल्पापेक्षया द्वितीयकल्पे त्वरयेति निरुक्तार्थ एव मन्वनुमत इति निष्णातानां परामर्शः ।

अयं चार्थः कुल्लूकभट्टेनापि वक्रोक्त्या प्रदर्शितः । " त्रिभागवयस्का च कन्या वोढुर्यूनो योग्येति वदता, अत्र " यून " इति वोढुर्विशेषणं निरुक्तार्थपोषकमन्यथा तु वोढुरित्येव पर्याप्तं स्यात् त्रिभागवयस्का इत्यनेन च प्रजननलक्षणस्त्रीकार्ययोग्याष्टचत्वारिंशद्वर्षात्मककालस्य त्रिभागमितं वयो यस्या इत्ययमर्थोऽभिधित्सितः । अथवा त्रिभागवयस्का इत्यस्य गार्हस्थ्यधर्मानुष्ठानयोग्यपञ्चाशदब्दात्मकवयसः त्रिभागमितं वयो यस्या इत्यर्थः, तत्र प्रमाणं तु " वनं पञ्चाशतो व्रजेदि " ति स्मृतिवचनमेव अत्र यद्यपि निरुक्तरीत्या षोडशाब्दाधिकः कालः प्राप्नोति तथापि सामीप्यात्प्रवादा इति न्यायेन षोडशाब्द-

लाभो न दुस्सम्भव इति कृतधिय एवावधारयन्तु । ततश्च षोडशवर्षवयस्कत्वमेव लभ्यत इत्यवदातमिदम् । अत एव "उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च । अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद् यथाविधि । म० । अ० । ९ । श्लो० ८८ । इत्येतदर्थं व्याचक्षाणः कुल्लूकभट्टः "कुलाचारादिभिरुत्कृष्टाय सुरूपाय समानजातीयाय वरायाप्राप्तकालामपि "विवाहयेदष्टवर्षामेवं धर्मो न हीयते" इति "दक्षस्मरणात्" इति वदन्नष्टवर्षायाः कन्यकाया ब्राह्माद्यतिरिक्तविवाहानर्हतामभिप्रेत्य "अप्राप्तकालामपि" इत्यपिकारेण अप्राप्तकालत्वकथनेन चाष्टवर्षाया विवाहानर्हतामसत्यां गुणिवरालाभलक्षणायामापदि अष्टवर्षाविवाहस्य धर्महानिहेतुतां च "एवं धर्मो न हीयते" इति व्यतिरेकमुखेनासूसुचत् एतेन 'त्रिभागवयस्का' इति कुल्लूकोक्तेश्चतुर्विंशतिवर्षवयस्कवरमपेक्ष्य त्रिभागमितमर्थतोऽष्टवर्षमितं वयो यस्या इति रीत्याऽष्टवर्षाया एवोपग्रह इत्यर्थवर्णनमप्यर्थज्ञानां निरस्तं तथा सत्यष्टवर्षायाः कन्यकाया अप्राप्तकालत्वोत्कीर्तनासंगत्यापत्तेः "एवं धर्मो न हीयत" इति वदन् दक्षोऽप्यष्टवर्षायाः कालान्तरेऽपि गुणिवरलाभसंभावनायामविवाह्यत्वमेव मेने इति न पाणिच्छन्नमच्छन्नधियाम् । यश्चायमष्टवर्षायाः पारिभाषिकगौर्या एवं नववर्षाया रोहिण्या दशवर्षायाः कन्यायाश्च परिभाषिताया विवाहविधिः सोऽयं काम्य एवेत्यसकृदवोचाम तथाविधवैधविधानस्य वैकुण्ठनाकपृष्ठस्वर्लोकाद्यवाप्तिहेतुतायास्तत्र तत्र तेष्वेव वचनेषु सुस्पष्टतया गौर्याद्युद्वाहविधेर्नित्यतायाः शङ्कितुमप्यशक्यत्वात् । न च न फलश्रवणमात्रात्काम्यत्वमितरथा तु "संध्यामुपासते ये तु ततं संशितव्रताः । विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्" इत्यादिवचनैर्नित्यस्य संध्याकर्मणोऽपि फलश्रवणात्काम्यत्वमापद्येत न वाऽर्थवादिकं तत्फलमिति

प्ररोचनामात्रपरं तदिति न संध्यादेर्नित्यतां व्याहन्तुमीष्टे तथा सति प्रकृतेऽप्यार्थवादिकमेव गौर्यादिदानफलश्रवणमित्यस्य सुवचतया गौर्यादिदानविधेर्नित्यत्वस्य तदवस्थत्वादिति फल्गु शङ्कनम् यतो गौर्यादिदानविधिर्नित्यो भवन् किं दातुरतथा कुर्वतः प्रत्यवायमावहेत ? उततथादीयमानायाः कन्यायाः ? आहोस्विद्वोढुरथवा सर्वेषा ? मप्यमीषामिति विवेचने नामीषु कस्यापि प्रत्यवायः सिध्यति तथाहि तत्र न तावद्दातुर्धर्मशास्त्रेषु रजोदर्शनानन्तरमिव ततः प्रागेकादशद्वादशब्दायाः कन्याया दाने प्रत्यवायः श्रूयते प्रत्युत मन्वादिना द्वादशवर्षाया उद्वाह्यत्वाभिधानाद्दातुरप्यप्रत्यवायो ; सति बाधके सूच्यते अत एव तु " पिता ऋतून्स्वपुत्र्यास्तु गणयेदादितः सुधीः । दानावधि गृहे यत्नात्पालयेच्च रजोवतीम् । दद्यात्तदृतुसंख्या गाः शक्तः कन्यापिता यदि " इत्याश्वालयनो दातुःप्रत्यवायं कन्याया रजोदर्शने एवाचष्टे ततः पूर्वं तु न क्वापि धर्मशास्त्रे दातुः प्रत्यवायसंस्पर्शश्रुतिः । नापि दीयमानायाः कन्यायाः द्वादशैकादशवर्षे विवाहे प्रत्यवायो यदि रजोदर्शनं न भवेत्, अत एवाश्वलायनः " उपोष्य त्रिदिनं कन्या रात्रौ पीत्वा गवां पयः । अदृष्टरजसे दद्यात्कन्यायै रत्नभूषणम् " मिति रजोदर्शनानन्तरमेव कन्यायाः प्रायश्चित्तमाचष्टे न ततः प्रागपि । नापि द्वादशैकादशवर्षामुद्वहन् वोढापि प्रत्यवैति " त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकी " मिति मनुनैव द्वादशाब्दायाः सुस्पष्टं विवाह्यत्वाम्नानात् । प्रत्यवायस्तु वृषलीमेवोद्वहतः, अत एव महर्षिराश्वलायनः प्राप्तर्तुमुद्दिश्य " तामुद्वहन् वरश्चापि कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतमिति प्राह । अत एव न सर्वेषां प्रायश्चित्ताचरणपक्षो युज्यतेऽन्तिमः, नहि प्रत्येकस्याप्रत्यवाये सर्वस्य तस्य प्रत्यवायः प्रयत्नेनापि शक्यो बोधयितुं बालाविवाहसमुत्सुकैः । एवमेव " च गौरीं वाप्युद्वहेद्भार्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् । यजेत

वाऽश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणावता" इति विष्णुपुराणे भगवान् पराशरोऽपि पितृगाथासु तृतीयेंऽशे गौरीपरिणयस्य परिणेतुरदृष्टविशेषाधायकत्वमेवान्वमंस्त न तु नित्यतामपि, इतरथा तु नीलवृषोत्सर्गोऽपि नित्यः स्यादिति न तिरोहितम्, एवं च यथा परिणेतुर्गौरीपरिणयः पितृप्रिय इति पितृतर्पकः काम्यो न नित्य एवं परिणेयाया अपि तादृगवस्थायाः परिणयः पूर्वोपदर्शितन्यायेन काम्य इत्येव युक्तं यथा च विवाहः स्त्रीणां नित्यो न भवति तथा तु पुरस्तादेवावेदितम्, अवशिष्टं च परस्तादपि पुरस्करिष्यते इति तादृगवस्थाया नित्यो विवाह इत्यनभिज्ञानामाशामोदकलाचम् । नच पराशरादिस्मृतौ अष्टमं वर्षमारभ्य दशमपर्यन्तं गौरीरोहिणीकन्यकाः परिभाष्य "अत ऊर्द्ध्वं रजस्वला माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलामित्युक्त्या दशत ऊर्द्ध्वमेकादशादिवर्षे रजस्वलापदप्रतिपाद्यायास्तस्या दाने दातृणां स्फुटमनर्थश्रवणं दीयमानायाश्चापि रजस्वलात्वेन दुष्टतासिद्धिरिति दशवर्षाभ्यन्तर एव विवाहावश्यंभावसिद्धिरिति दशतः पूर्वमेव धर्म्यो विवाहो न ततः परं, त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीमिति मनूक्तिस्तु वोढुर्दोषाभावेनाप्युपपादयितुं शक्यते यथा हि हिंसा पुरुषस्य दोषमावहन्त्यपि यागमुपकुरुत इति यागोपयोगिता शास्त्रेण बोध्यते एवं द्वादशवर्षाविवाहो दीयमानाया दातुश्च दोषमावहन्नपि वोढुर्नानर्थहेतुः प्रत्युत सहसैव विवाहफलीभूतसंततिसमृद्धिहेतुरिति न कश्चिदुपरोधो मानवस्मृतेरिति मानववचनबलाद्विवाहोद्वादशवर्षाया वोढुर्दोषमनावहन्नपि दातुर्देयायाश्च दोषमापादयेदेवेति क्षुद्रं शङ्कनीयं विधिस्पृष्टे दोषानवकाशन्यायेन तथा वक्तुमशक्यत्वात् अत एव "अशुद्धमिति चेन्न शब्दादिति भगवान् व्यासोऽपि शब्दबोध्येऽर्थे दोषानवकाशमास्थित

"अत ऊर्द्ध्वं रजस्वले" ति पाराशरवचस्तु मानववचो बलान्नाव्यवधानेन दशत ऊर्द्ध्वं रजस्वलात्वबोधकं परं तु देशभेदेन रजःकालस्य भिन्नतया तत्तत्कालव्यक्त्युपलक्षकम्,

अथवा घोरे कलौ कन्यानां रजःसंबन्धस्य त्वरया श्रूयमाणतया यथाश्रुतपरमेव, ऐतिहासिका हि कलौ षोडशवर्षमितं परममायुराचक्षते, अभिदधते च चतुर्वर्षवयस्ककन्यकायां पञ्चवर्षवयस्कबालसंपर्कात्प्रजोद्भवम् । आधुनिकैः शास्त्रमर्मानभिज्ञैरपि शीघ्रमनुष्ठापिते विवाहे पुनरयं कालस्त्वरया सांनिध्यमुपयास्यतीति तु सुव्यक्तमेवेत्युपरमाम इति ।

स्वाभिमतमनुमर्मार्थनिरूपणम् ।

तदिदमपि हठाकृष्टप्रायमिति निजसर्वतन्त्रस्वातन्त्र्यव्यञ्जनमिति, ऋजुदृशां मोहकमिति अल्पदृशां विदुषामपि आश्चर्यकरमिति च नाञ्जसा रोचते सर्वात्मनाऽस्मभ्यं, तथाहि यदि भारतब्रह्मपुराणाद्यनुरोधेन अष्टवर्षामिति अष्टौ च अष्टौ चेत्येकशेषीकृत्य व्याख्यायते, तर्हि "वर्षैरेकगुणां भार्यामुद्वहेत् त्रिगुणः स्वय" मिति स्मृतिमनुरुध्य यथाश्रुतमेव किं न व्याख्यायते, न हि भारतब्रह्मपुराणे एवानुरोद्धव्ये न तु स्मृत्यन्तरमपीति पाणिपिधानम् । किंच यदि मनुना द्वादशाब्दायाः षोडशाब्दायाश्च विवाहोऽभिहितो न त्वष्टमाब्दाया अपि तर्हि काम्यविवाहानभिधाननिबन्धनं न्यूनत्वमप्यापद्येत । किंच मनुवचनस्थस्याष्टवर्षाशब्दस्य षोडशवर्षार्थकत्वं बलादिव प्रसाध्यापि अष्टवर्षाया विवाहः शास्त्रेषु नोक्त इति कथमपि भवता वक्तुं शक्यमस्तीति मानवं यथाश्रुतं वचनमष्टवर्षाया एव विवाहबोधकमित्युपगन्तुमुचितं परंतु, अष्टवर्षाविवाहः काम्य इति तदकरणे न कश्चित्प्रत्यवाय इति मादृशामयमृजुः पन्थाः ॥

स्वानभिमतेन प्रकारान्तरेण गौर्यादिविभागपरस्मृतिवाक्यमुत्थापयति ।

यश्चाप्युपरोधः "अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्द्ध्वं रज-

स्वले" ति सोऽप्यसौ धर्मशास्त्रीयपरिभाषाऽनवबोधविजृम्भित,स्तथा हि किमेतेन गौर्यादीनां विवाह्यतां मनुषे? आहोस्विद् रजस्वलाया अनुद्वाह्यतां? तत्र द्वितीये ओमिति ब्रूमः। रजस्वलाविवाहस्य दुरदृष्टजनकतायाः शास्त्रेष्वभिहितत्वान्मयाऽपि तस्या अनुद्वाह्यत्वस्य तत्र तत्रोद्घुष्यमाणत्वाच्च, द्वितीये तु "अप्राप्ते रजसो गौरी प्राप्ते रजसि रोहिणी। अव्यञ्जिता भवेत्कन्या कुचहीना च नग्निका।१८। व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नैः सोमो भुञ्जीत कन्यकाम्। पयोधरैस्तु गन्धर्वो रजसाऽग्निः प्रकीर्तितः। १६। इति गोभिलीयगृह्यासंग्रहे ऋषिणा अप्राप्तरजस्काया गौर्याः प्राप्तरजस्काया रोहिण्याः समुत्पन्नयौवनव्यञ्जनायाः संप्राप्तप्रौढवयस्कायाः कन्यकायाश्चोद्वाहः स्पष्टमुदीरित इति कस्तवापि तत्र विसंवाद[1]संभवः। यदि च "अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी। दशवर्षा भवेत्कन्ये" त्यादिना नववर्षवयस्करोहिण्यादीनामभिहितत्वात्कथं तस्याः प्राप्तरजस्कत्वरूपगृह्यासंग्रहोक्तरोहिणीत्वसंभवः कथं वा दशवर्षवयस्कायाः कन्यकाया यौवनसुलभोन्नतपयोधरत्वादिवैशिष्ट्यलक्षणगृह्यासंग्रहोक्तकन्यात्वसंभव इति विचार्यते तदा तयोः स्मृत्योः सामत्यसंरक्षणाय अष्टवर्षाभवेद् गौरीत्यत्रत्याष्टपदस्यैकशेषमवलम्ब्य षोडशार्थकत्वं वक्तव्यं ततश्च षोडशवर्षवयस्काया अप्राप्तरजस्काया गौरीपदवाच्यता वक्तव्या, स एव चार्थोऽप्राप्ते रजसो गौरीत्यनेनोच्यते इति न कश्चिदिह वचनवैमत्यसंभवः। न च षोडशवर्षाणामधुना बालचयप्रसव इति कथं षोडशवर्षा सा प्रौढयौवनाऽप्यप्राप्तरजस्केति अनरण्यनिवासिना संभावयितुमपि शक्यमिति वाच्यं पाश्चात्यदेशेष्वधुनाऽपि षोडशवर्षपर्यन्तं रजोधर्ममनश्नुवानाः सर्वथा ग्राम्यधर्मानभिज्ञा धन्यतमाः कन्या वर्तन्ते इति लोकयात्राऽनभिज्ञानामेव षोडशवर्षवयस्कानाम-

---

[1] गृह्यासंग्रहोक्तो रोहिण्यादिविवाहो न काम्य इत्यन्यदेतत्।

प्राप्तरजस्कत्वे अविश्वाससंभवः । एतद्देशेष्वपि च शास्त्रतत्त्वानभिज्ञ-जनवञ्चिताः पितरः स्वीयकन्यकाः केवलमष्टवर्षवयस्का एव परिणाययन्ति यौवनस्थैस्ते च ताभिः संलपन्ति हसन्ति हासयन्ति दुश्चेष्टयन्ति इति त्वरितयौवनास्ताः क्रियन्त इति न कस्यापि परोक्षं लोकयात्राभिज्ञस्य, अत एव कृत्रिमयुवत्यस्ताः प्रसूयन्ते ऽल्पबुद्धीनि हतभाग्यभाञ्जि अनूर्ज्ज्यपत्यानि लोकद्वयामङ्गलानि, तदपत्यानि तु पुनर्मात्रादिदोषवशात्स्वभावेनैव सहसैवाल्प एव वयसि यौवन-सुलभधर्मवन्ति भवन्तीति शास्त्रतत्त्वाभिज्ञानां लोकयात्राप्रवीणा-नामनुभवसिद्धमिति षोडशवर्षवयस्काऽपि पुनरस्पृष्टयौवनेत्यसंभव इत्यत्यन्तमनिपुणभणितम् । एवं नववर्षा च रोहिणीत्यत्र पूर्ववदे-कशेषीकृतनवपदात् प्रकरणानुग्रहमहिम्ना परिग्रह इति अष्टादशवर्षा रोहिणी एवमन्यत्रापि । तत्तदर्थोहः कार्यं इति गृह्यासंग्रहेण भव-त्येकार्थता । न च "अष्टवर्षा भवेद् गौरीत्यादेरेवानुरोधेन गृह्या-संग्रहवाक्यार्थोऽन्यथयितव्य इति शङ्क्यम्, देशभेदेन युगभेदेन देश-प्रचलिताचारभेदेन भोज्यपेयादिभेदेन च यौवनप्राप्तिकालस्याङ्गुलीकृ-त्यनिर्देष्टुमशक्यतया तस्याहत्य निर्दिदिक्षया प्रवृत्तस्य रजःप्राप्त्यप्राप्ति-यौवनचिह्नसमुद्भवप्रवृत्तिनिमित्तकस्य रोहिणीगौर्यादिपारिभाषिकपदप्र-दर्शनशास्त्रस्य औपचारिकार्थपरतायाः संभावयितुमप्यशक्यत्वात् । अत्रेदमालोचनीयं कन्यापदार्थश्चतुर्विध उपलभ्यते धर्मशास्त्रेषु तत्रा-व्यञ्जितयौवनचिह्ना अग्नीषोमगन्धर्वाभुक्ता मनूक्ता द्वादशवार्षिकी प्रथमा द्वितीया तु "व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नैः सोमो भुञ्जीत कन्य-काम्" इति गृह्यासंग्रहोक्ता दशवर्षा तु कन्यकेति स्मृत्यन्तरोक्ता प्रौ-ढयौवना द्वितीया कन्यका । तृतीया च रजःसंबन्धशून्या यामभिप्रेत्य "कुचहीना च नग्निका" इति गृह्यासंग्रहः । यां च "नग्निका च श्रेष्ठा" इत्याह स्म गोभिलः । यां चासकृत्प्रशशंसापरोऽपि

स्मृतिवर्गः । वैदिकसंस्कारपूर्वकपुरुषसंप्रयोगशून्या च तुरीया यथा कुन्तीसत्यवत्यादिः । केचित्पुनरासु विधासु मन्दोदर्यादेरन्तर्भावमपश्यन्तः पञ्चमीं दैविकीं कन्यामाचक्षते वयं त्वक्षतयोनिं चतुर्थीं कन्यां ब्रूमहे इति मुनिमन्त्रमाहात्म्यादिना पुरुषसंप्रयोगेऽपि याः कन्याः कुन्तीसत्यवतीमन्दोदर्यादयस्तासां नासंग्रहः, कुन्ती हि मन्त्रमहिमसमाहूतदिनकरवीर्यसमुत्पादितकर्णापत्याऽपि पुनः कन्यैवेत्यैतिहासिकाः, एवं च रजःसंबन्धशून्यासु अक्षतयोनित्वसत्त्वेऽपि उपाधेरसांकर्येणोपाधेयसंकरो न दोषाय आधुनिकासु असंस्कृतासु पुरुषसंप्रयुक्तासु कासुचित्कन्यात्वव्यवहारस्तदपत्येषु कानीनत्वव्यवहारस्तु कन्येत्यभिमता कन्येत्युक्ता वेति गौण इति सर्वं चतुरस्रम् ।

एवं च "काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि । न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हि चि" दिति मन्वाद्यनुमतकन्यापदव्यवहारो मुख्यतया तासु निर्वोढुं शक्य इति चतसृणामपि कन्याव्यक्तीनां स्मार्तलक्ष्यव्यक्तयः स्वयमूहनीयाः । तदेवमष्टादशवार्षिक्या अपि कन्यापदार्थत्वे व्यवस्थापिते तस्या उद्वाह्यत्वे मानं "सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽददद्ग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्" ॥ इति श्रुतिरेव ।

न चाजन्म अग्नीषोमगन्धर्वकृतः प्रत्येकं द्विवार्षिको भोग इत्यष्टादशवार्षिक्या न तत उद्वाह्यत्वसिद्धिः किन्तु वर्षषट्कपर्यन्तं देवभोगविश्रान्तौ सप्ताष्टवार्षिक्या इति सांप्रतं वक्तुं "व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नैः सोमो भुञ्जीत कन्यकाम् । पयोधरैस्तु गन्धर्वो रजसाऽग्निः प्रकीर्तितः । कामकाले तु संप्राप्ते सोमो भुङ्क्ते तु कन्यकाम् । रजःकाले तु गन्धर्वो वह्निस्तु कुचदर्शने इति गृह्यासंग्रहस्मृत्या समुत्पन्नसर्वयौवनचिह्नाया रजस्वलाया अग्निदेवोपभोग्यत्वाभिधानेन तदेकवाक्य-

तया निरुक्तश्रुत्याऽपि अग्न्युपभोगः प्रौढे वयसि वक्तव्य इति तदनन्तरकालिकस्य विवाहलक्षणमनुष्यसंबन्धस्य सप्ताष्टवर्षावस्थायां देवोपभोगात् पूर्वं संभावयितुमशक्यत्वात् । अथ प्रौढे वयसि विवाहकरणे कन्याया रजःसंबन्धे दातुः पित्रादेर्ग्रहीतुश्च प्रायश्चित्तमिति तद्वचनानां का गतिरिति चेन्न अनुरूपेषु गुणिवरेषु कन्यामभ्यर्थयमानेषु अददतः पित्रादेस्तत्स्मरणात् तथा च बौधायनः "न याचते चेदेवं स्याद् याचते चेत्पृथक् पृथक् । एकैकस्मिन् ऋतौ दोषं पातकं मनुरब्रवीत्"। अत्र पूर्वं तेनैव "त्रीणि वर्षाण्यृतुमतीं यः कन्यां न प्रयच्छति । स तुल्यं भ्रूणहत्याया दोषमृच्छत्यसंशयम्" ॥ इत्यभिहितम् ।

वसिष्ठेनापि "यावच्च कन्यामृतवः स्पृशन्ति तुल्यैः सकामामभियाच्यमानाम् । भ्रूणानि तावन्ति हतानि ताभ्यां मातापितृभ्यामिति धर्मवादः"। ततश्च याचकासत्त्वे वर्षत्रितयमारभ्य ऋतुमधिगच्छन्ती कन्या तत ऊर्द्ध्वमपि यदि पित्रा न दीयते तदा तादृशस्य पितुर्भ्रूणहत्यापातकं यदि तु सदृशः कश्चन वरः कन्यामभ्यर्थयेत् पिता च न दद्यात्तदा एकैकस्मिनृतौ भ्रूणहत्यापातकम् । अत एव स एवाग्रे "त्रीणि वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत पितृशासनम् । ततश्चतुर्थे वर्षे तु विन्देत सदृशं पतिम् । इत्यवोचत्, मनुरपि नवमेऽध्याये "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्य्यृतुमती सती । ऊर्द्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् इति । ६ । ततश्चानभ्यर्थयमाने गुणिनि वरे त्रिचानृतुकालानप्यतिवाहयन्ती नात्मपितृप्रत्यवायाय, नापि स्वात्मनोऽधमत्वाय । न च पत्युः पाणी ग्रहीष्यतोऽनुपकाराय कन्या कल्पते अत एव तु "अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद् यदि स्वयम् । नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति श्लो० ६१ ।" इति स्पष्टमेवानपराधित्वं मनुराह नवमेऽध्याये, इति कोऽयमाक-

स्मिकस्त्रासः, यदपरित्यक्तस्तना जातमात्रा एव बालिका वालिशै-र्विधेयवैधेयैर्वैधव्यविधये सर्वथाऽपि विधये समर्प्यन्ते । अथ च सर्वत्र सूत्रेषु स्मृतिषु च नग्निकादानस्यैवाभिहितत्वात् त्वदुदितमहाभारतादिवचनेष्वपि नग्निकाया एव विवाह्यत्वस्योक्तत्वात् । गृह्यासंग्रहेऽपि च "तस्मादव्यञ्जनोपेतामरजामपयोधराम् । अभुक्तां चैव सोमाद्यैः कन्यका तु प्रशस्यते" ॥ इत्यादिना कन्यकादानस्यैवोक्तत्वाच्च कथं प्राप्तवयस्काया विवाह्यत्वाभिधानं युक्तमिति चेत्सत्यं कालमहिम्ना कन्यकापरीक्षणविधीनामननुष्ठानादनुष्ठानेऽपि वा तेषां निष्फलत्वस्यासकृत्परीक्षितत्वाच्च वैधव्ययोगानां प्रथमतो ज्ञातुमशक्यत्वात्तथा शक्यत्वेऽपि तेषां प्रतिविधातुमशक्यतया तादृशविवाहविधेः सर्वथा वर्तमानकाले परिहार्यत्वात् । अत एव प्रौढवयस्काया उद्वाह्यत्वाभिमानेन कातीयगृह्यसूत्रेषु "त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौ स्यातामधः शयीयातां संवत्सरं न मिथुनमुपेयातां द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्तत" इत्युक्तम् । एतत्समानार्थकं सूत्रान्तरमपि पूर्वमुपन्यस्तमिति तत्र द्रष्टव्यम् । संस्कारकौस्तुभे शौनकोऽपि "अत ऊर्द्ध्वं त्रिरात्रं तौ द्वादशाहमथापि वा । शक्तिं वीक्ष्य तथाऽब्दं वा चरन्तां दम्पती व्रतम् ॥ अक्षारालवणाहारौ भवेतां भूतले तथा । शयीयातां समावेशं न कुर्यातां वधूवरौ ॥ हिरण्यकेशीसूत्रेऽप्येवमेव अत्र विवाहानन्तरं ब्रह्मचर्यं बोधयद्भिरेतैर्धर्मशास्त्रैः परिपक्वदशापन्ने वयसि वधूवरयोर्विवाहो नाधर्म्य इति गम्यते इतरथा सप्ताष्टवर्षकन्यकाया उद्वाह्यत्वे तादृशब्रह्मचर्यविधायकवाक्यानां वैयर्थ्यमेव अत्यल्पे वयसि कृतोः पूर्वं पुंसंबन्धस्य स्त्रीषु लोकशास्त्रयोर्विगीतत्वेन त्वयाऽपि तस्य वक्तुमशक्यत्वात् ।

अनृतुपत्नीगमनं ब्रह्महत्यासमम् । (The cohabitation before the commencement of menstruation is a sin like Brahmahatyá).

तथा हि स्मृतिः "प्रागरजोदर्शनात्पत्नीं नेयाद् गत्वा

पतत्यधः। व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयात्। इति स्फुटं रजोदर्शनात्पूर्वं पत्नीगमनस्यानिष्टसाधनत्वं, तच्चानिष्टं, यदृच्छाजनितदंशमशकाद्युपघातजन्यानिष्टवन्नाल्पं किन्तु पातित्यप्रयोजकमित्युक्तं 'गत्वा पतत्यध' इति, अत्र च दत्त्वाऽवाप्नोतीत्यादौ दानस्यावाप्तिहेतुताया इव सिद्धं साध्यायोपयुज्यत इति न्यायेन गत्वा पततीति गमनस्य पातित्यहेतुत्वमेकं, स्वीयशुक्रस्य व्यर्थीकारनिबन्धनं चापरमिति व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयादित्युक्तम्, अत्रत्यब्रह्महत्यापदं गन्तृसजातीयगन्तुत्पाद्यबालघातजनितपातकपरं रजःशून्यपत्नीं गच्छतः क्षत्रियादेः स्वीयशुक्रव्यर्थीकारेण स्वोत्पाद्यबालघातप्रत्यवायस्यैव युक्तत्वात्। इत्थं चात्र अरजस्कपत्नीं गच्छतः पत्युः पूर्वोक्तपातकद्वयसहितं पत्नीनिष्ठदुरदृष्टसमुत्पादनजन्यं तृतीयमिति पातकत्रयम्। मनुरपि च कुमारीगमने गुरुतल्पप्रायश्चित्तमाह अ ११। ५८। रेतःसेकः कुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजासु च। सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः॥ इति, अत्र गुरुतल्पसाम्याभिधानं गुरुतल्पप्रायश्चित्तेन शुद्धिबोधनायेति ज्ञेयं, यमस्तु "रेतः सिक्त्वा कुमारीषु चाण्डालीष्वन्त्यजासु च"। सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते"॥ इति मरणान्तिकं दण्डमाह। अत्रेयं व्यवस्थितिः अविवाहितायाः कुमार्या ऋतौ कामतः सकृद्गमने गुरुतल्पप्रायश्चित्तं कामतोऽसकृद्गमने तु मरणान्तिकं, स्वभार्यायामृतोः पूर्वं सकृद्गमने अधःपातः, असकृद्गमने तु ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तम्। ऋतुकालस्तु देशभेदेन यद्यपि भिन्नस्तथाऽपि सामान्यरीत्या द्वादशाब्दे भवतीति शक्यते वक्तुं ततः पूर्वं रोगविरहे रजसोऽदर्शनात्, अत एव सुश्रुते शारीरस्थाने तृतीयाध्याये "तद्वर्षाद् द्वादशात्काले वर्तमानमसृक् पुनः। जरापक्व शरीराणां याति पञ्चाशतः क्षयम्" इत्युक्तम् अयं च ऋतुसंभवकालोऽभिहितो न तु द्वादशाब्दे ऋतुर्भवत्येवेत्युच्यते, त्रिंशद्वर्षः षोड-

शवर्षा भार्या विन्देत नग्निकाम् इति धर्मशास्त्रे षोडशवर्षाया अपि नग्निकात्वाभिधानात्। प्रौढवयसोर्वधूवरयोर्विवाहे तु तादृशब्रह्मचर्य-विधानं युक्तमेव। अत एव ब्रह्मपुराणे "कृते विवाहे वर्षैस्तु वास्तव्यं ब्रह्मचारिणा। यद्यष्टवर्षा कन्या स्यात्तथा तत्त्रिगुणः पुमान्॥ अथ तद्द्वादशाहानि त्रिंशद्वर्षेण सर्वदा। यदि द्वादशवर्षा स्यात्कन्या रूपगुणान्विता॥ द्वात्रिंशद्वर्षपूर्णेन यदि षोडषवार्षिकी। लब्धा तदा तु वास्तव्यं षड्रात्रं संयमेन तु॥ विंशत्यब्दा यदा कन्या वास्तव्यं तत्र वै त्र्यहम्। अत ऊर्द्ध्वमहोरात्रं वास्तव्यमतिसंयतैः" इति। अत्रेयं व्यवस्था सप्ताष्टवर्षवयस्ककन्यकाया विवाह्यत्वबोधकानि महाभारतीयानुशासनिकपर्वणि दानधर्मप्रकरणस्थानि पूर्वोक्तवचनानि काम्यविवाहपराणि, ब्राह्मादिविवाहपराणि वा, यथा ब्रह्मवर्चसादिकामस्य पञ्चवर्षस्यैवोपनयनविधिः। अत एव "कन्यां दद्यान्नागलोक" मिति तत्र तत्र फलश्रवणमपि संगच्छते द्वादशैकादशादिवर्षवयस्कायास्तु मुख्यो विवाहविधिः। तदनन्तरकाले विवाहबोधकवचनानि तु दातुः पित्रादेर्देशान्तरगमनादिप्रयोज्यासांनिध्यादिलक्षणापत्पराणि गुणवद्वरालाभलक्षणापत्पराणि वा गान्धर्वविवाहपराणि वा गान्धर्वविवाहस्यान्योऽन्यप्रीतिनान्तरीयकस्याल्पे वयस्यसंभवात्, क्षत्रियपराणि वा तेषु तादृशाचारस्याविगानात्।

स्वीयवक्तव्यं संक्षिपति। वयं तु ऋतुकालाव्यवहितप्राक्कालमेव स्त्रीणां वैवाहिकं कालमाचक्ष्महे "प्रदानं प्रागृतो" रिति गोतमस्मरणात्। "अतोऽप्रवृते रजसि कन्यां दद्यात्पिता सकृत्" इति महाभारतवचनात् "नग्निकां ब्रह्मचारिणे" इति सर्वर्षिभिर्भृशमुक्तत्वाच्च। अत एव तु मनुरपि नवमे "कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः। मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता॥ श्लो० ४। इति स्पष्टमेव काले कन्यकामप्रददतः पितुर्निन्द्यत्वमाचष्टे स्म, एवमेव तु स्मृत्य-

न्तरेऽपि "प्रदानं प्रागृतोस्तस्या ऊर्द्धं कुर्वन् स दोषभाक्" इति, रजस्वलामुद्वहतोऽपि च प्रायश्चित्तमाम्नायते—यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः । असंभाष्यो ह्यपाङ्क्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः । वृषलीसंग्रहीता यो ब्राह्मणो[1] मदमोहितः । सततं सूतकं तस्य ब्रह्महत्या दिने दिने । पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वृषली स्मृता । दद्याद् गुणवते कन्यां नग्निकां ब्रह्मचारिणे । अपि वा गुणहीनाय नोपरुन्ध्याद्रजस्वलाम् ॥ इति, ज्योतिषशास्त्रेऽपि च अनृतोरेव कन्याया विवाहो धर्म्य इति तत्र तत्र सुस्पष्टमिति नातीव प्रयसनीयमिति सुव्यवस्थोऽर्थः ।

केचित्तु यथा ऋतग्राहिणोऽधिकवयस्काया अधिकवयस्केन विवाहमेवमुदाहरिष्यमाणवैदिकप्रमाणैः समर्थयन्ते ।

१ जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टीनामभिशस्तिपावा ॥ शतं च जीव शरदः सुवर्च्चा रयिं च पुत्राननुसँव्व्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः । १ । इत्यधोवस्त्रधारणं कन्यायाः ।

२ याऽअकृन्तन्नवयं याऽअतन्वत ॥ याश्च देवीस्तन्तूनभितोऽततन्यतास्त्वा देवीर्ज्जरसे सँव्व्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः । २ । इत्यूर्द्धवासोधारणम्

३ समञ्जन्तु व्विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ । सम्मातरिश्वा सन्धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ । ३ । इति परस्परनिरीक्षणं वधूवरयोः ॥

४ यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा ॥ हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु । ४ । इति कन्यां पितृतो निष्क्रामति ।

१ अत्र ब्राह्मण इति विशेषोपादानाद्वर्णान्तरे रजस्वलापरिणयापेक्षया ब्राह्मणवर्णे दोषाधिक्यमभिधित्सितम् ।

५ अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधिशिवा: पशुभ्य: सुमना: सुवर्चा: । वीरसूर्द्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ५ सोम: प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविदऽउत्तर: ॥ तृतीयोऽअग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा: । ६ । सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये ॥ रयिं च पुत्राँश्चादादग्निर्म्मह्यमथोऽइमाम् ७ सा न: पूषा शिवतमा मे रयसानऽऊरू ऽउशती विहर । यस्यामुशन्त: प्रहराम शेपं यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्यै । ८ । इति मन्त्रचतुष्टयेन वधूवरौ परस्परं समीक्षेते ॥

६ ऋताषाड् ऋतधामाऽग्निर्गन्धर्व: । स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । ९ । ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ताभ्य: स्वाहा । १० । संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्व: । स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । ११ । संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस ऽआयुवो नाम ताभ्य: स्वाहा । १२ । सुषुम्ण: सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व: । स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । १३ । पितर: पितामहा: परेऽवरे ततास्ततामहा: । इह माऽवन्त्वित्यादि । १४ । सुगं नु पन्थां प्रदिशन्नऽएहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्न ऽआयु: । अपैतु मृत्युरमृतं म ऽआगाद्वैवस्वतो नोऽअभयं कृणोतु स्वाहा । १५ । परं मृत्यो ऽअनुपरेहि पन्थां यस्तेऽअन्यऽइतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा न: प्रजां रीरिषो मोत वीरान् स्वाहा । १६ । एतैर्मन्त्रैर्घृताहुति: कार्या ॥

७ अर्यमणं देवं कन्याऽअग्निमयक्षत । सनोऽअर्यमा देव: प्रेतो मुञ्चतु मा पते: स्वाहा । १७ । इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका । आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा । १८ ।

इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव । मम तुभ्य च संवननं
तदग्निरनुमन्यतामियं स्वाहा । १९ । इति मन्त्रत्रयेण लाजा-
ऽऽहुतिः कर्त्तव्या ॥
८ गृभ् … दष्टिर्यथा
सः … र्हपत्याय
देव … मो ऽत्र-
हम् … । २१ ।
ता … जनयावहै
पुत्र … : संप्रियौ
रो … म शरदः
शत … चतुष्टयेन
वर
९ आ … न्यतोऽव
बा … नमारोह-
यि
१० सर … विश्वस्य
भूत … प्रवद्यस्यां
वि … स्त्रीणामुत्त-
मँय
११ तु … पतिभ्यो
जा … वरौ प्रद-
चि
१२ एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु । २८ । द्वे ऽऊर्ज्जे विष्णुस्त्वा नयतु ।
२९ । त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु । ३० । चत्वारि
मायो भवाय विष्णुस्त्वा नयतु । ३१ । पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा

५ अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा: पशुभ्य: सुमना: सुवर्चा: । वीर-
सू ाम: प्रथमो
वि स्तुरीयस्ते
म दग्नये ॥
रा पूषा शिव-
त : प्रहराम
शे चतुष्टयेन
व

६ ऋ क्षं पातु
त र्वस्तस्यो-
ष संहितो
वि ातु तस्मै
स्व र्वस्तस्य
म सुषुम्ण:
सूर्य ातु तस्मै
स्वा ास्तता-
मह दिशन्नऽ-
एहि म ऽआ-
गाद्व ा ऽअनु-
परे श्रृणवते
ते ब्र । एते-
मन्त्रै ॥

७ अर्यमणं देवं कन्याऽअग्निमयक्षत । सनोऽअर्यमा देव: प्रेतो
मुञ्चतु मा पते: स्वाहा । १७ । इयं नार्युपब्रूते लाजानावप-
न्तिका । आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा । १८ ।

इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव । मम तुभ्य च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियं स्वाहा । १६ । इति मन्त्रत्रयेण लाजाऽऽहुतिः कर्तव्या ॥

८ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगोऽअर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वाऽदुर्गार्हपत्याय देवाः । २० । अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्य मो ऽअहम् । सा माऽहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् । २१ । तावेहि विवहावहै सह रेतो दधावहै । प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्द्यावहै बहून् । २२ । ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्य मानौ । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम् । २३ । इति मन्त्रचतुष्टयेन वरः साङ्गुष्ठं हस्तं गृह्णाति वध्वाः ॥

९ आरोहेममश्मानमश्मेव स्थिरा भव ॥ अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः । २४ । अनेन मन्त्रेणाश्मानमारोहयति वरः ।

१० सरस्वति प्रेदमव सुभगे व्वाजिनीवती ॥ यान्त्वा व्विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः । २५ । यस्यां भूतं समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् । तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमँय्यशः । २६ । इति मन्त्रभ्यां वरो गाथां गायति ।

११ तुभ्यमग्रे पर्य्यवहन्त्सूर्य्यांव्वहतु ना सह ॥ पुनः पतिभ्यो जायां दाऽग्ने प्रजया सह । २७ । इति मन्त्रेण वधूवरौ प्रदक्षिणं कुरुतः ।

१२ एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु । २८ । द्वे ऽऊर्ज्जे विष्णुस्त्वा नयतु । २९ । त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु । ३० । चत्वारि मायो भवाय विष्णुस्त्वा नयतु । ३१ । पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा

नयतु । ३२ । षड्तुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु । ३३ । सखे सप्त पदा भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु । ३४ ।
इति मन्त्रसप्तकेन वरोऽग्नेरुदीचीं दिशं सप्तपदानि प्रक्रमयति ।

१३ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् । ३५ । इति मन्त्रेण वरो वधूमूर्द्धन्यभिषिञ्चति ।

१४ मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं तेऽअस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् । ३६ । अनेन मन्त्रेण दक्षिणांसमधिहृदयमालभते वरः ।

१५ सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ॥ सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन । ३७ । इति मन्त्रेण वधूसीमन्तदेशे सौभाग्यद्रव्यं सिन्दूरं वरो ददाति ।

१६ ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधिपोष्ये मयि मह्यन्त्वाऽऽदात् । बृहस्पतिर्म्मया पत्या प्रजावती सञ्जीव शरदः शतम । ३८ । इत्यनेन मन्त्रेण ध्रुवं तारकाविशेषं वरो दर्शयति ।

एतेषां विवाहे उपयुक्तमन्त्राणामर्थानुसंधानेन प्रौढे वयसि पुंसामिव स्त्रीणामपि नातिबालानां विवाह इति ।

तदत्र किं युक्तं किं चायुक्तमिति सुधियः स्वयमूहन्तामिति नावसरोऽधिकमीमांसायाः सारमात्रमादित्समानानामस्माकम् ॥

एकस्य पुरुषस्य अनापदि बहुभार्यापरिणयोऽशास्त्रीयः । (Polygamy is prohibited.)

अत्रेदमपि प्रसङ्गतो निरूपणीयं किमेकस्य निर्निमित्तमनेकभार्यापरिणयः शास्त्रीयो न वेति, अत्र केचित् "एकस्य बह्व्यो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन! । नैकस्या बहवः पुंसः श्रूयन्ते पतयः क्वचित्" इति महाभारते । "लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः । यस्मात्तस्मात् स्त्रियः सेव्या भर्तव्याश्च सुरक्षिताः" इति योगियाज्ञवल्क्यस्मृतौ च एकस्य पुंसो बहुभार्यापरिणयो विधीयते, एकस्या बहवः

पुंसः श्रूयन्ते इति भारते श्रूयन्त इत्युक्त्या श्रुत्यनुमतत्वं च बहुपत्नीकत्वे सिध्यति, अस्ति च श्रुतिः "यदेकस्मिन् यूपे द्वे रशने परिव्ययति तस्मादेको द्वे भार्ये विन्देते" ति, याज्ञवल्क्यस्मृतौ च स्त्रियः सेव्या इति बहुवचनमेकस्य बहुभार्यापरिणयविधायकमिति विनापि निमित्तं बहुपत्नीकत्वं धर्म्यमातिष्ठन्ते ।

तदेतदनाघ्रातमीमांसागन्धानामतिमतिव्यामोहैकनिबन्धनं, यतो विवाहांशे न वैधव्यापारसंभवस्तस्य रागत एव परिप्राप्तत्वात्, नापि विवाहस्य स्वरूपतः परिप्राप्तत्वेऽपि बहुपत्नीकत्वे विधिव्यावृत्तिस्तस्यापि रागत एव सिद्धेः, नापि बहुपत्नीकत्वे शास्त्रानुमतिः, "बन्ध्याऽष्टमेऽधिवेत्तव्या दशमे स्त्री मृतप्रजा । एकादशे स्त्रीजननी" इत्यादिशास्त्रेणाधिवेदनस्य सुचिरकालप्रतीक्षासापेक्षतायाः पुमपत्याजननस्वरूपापत्कालीनतायाश्च स्पष्टसिद्धतया बहुपत्नीपरिणयस्य आपद्येवानुमतत्वसिद्धेः, आपद्यपि च आधिवेदनिकधनदानलक्षणोत्कोचदानेन पत्नीसमतेरावश्यकतायास्तत्र तत्र धर्मशास्त्रेषु सुस्पष्टतया रोमनिवासिनामिन्द्रियारामयवनानामिव बहुपत्नीपरिणयस्यार्यकुलेऽत्यन्तमशास्त्रीयत्वात् । यच्च "एकस्य बह्व्यो विहितामहिष्य" इति भारतावष्टम्भदानं तदेतदतिहासाय न हीदमेकस्य बहुपत्नीपरिणयविधित्सया प्रवृत्तं किन्तु द्रौपद्या युधिष्ठिरादिभिः पञ्चभिर्भ्रातृभिः संभूय पत्नीत्वेन परिग्रहं श्रुत्वा तादृशानुष्ठानस्य च पशुधर्मतामवगत्यातिखिन्नेन द्रौपदीपित्रा राज्ञा युधिष्ठिरं प्रति हे कुरुनन्दन ! एकस्य पुंसो बह्व्यो महिष्यो भवेयुरपि निमित्तोपनिपातेन, परं तु नैकस्या बहवः पुंसः-पुमांसः श्रूयन्ते पतयः क्वचित् इति सोपालम्भमुक्तं, श्रूयन्ते इत्यभिदधानेन च राज्ञा द्रुपदेन "नैकस्या बहवः सह पतय" इति श्रुतिर्निर्दिदिक्षिता, तदेवमिदं भारतवचनं नैकस्य निर्निमित्तमेकदा बहुपत्नीकत्वविधायकम्, अत एव त्विह एकस्य बहवो

विहिता महिष्य इत्युक्तं, महिषीशब्दस्य कृताभिषेकपट्टपत्नीपरतया धनदुर्मदानां चलेन्द्रियाणां राज्ञां बहुदारयोगस्य श्रुतत्वेऽपि नापरेषां बहुदारयोगो युक्तः क्वचिदित्ययमर्थोऽभिधित्सितः, । एवमिहोत्तरार्द्धे श्रूयन्ते पतयः क्वचिदिति ब्रुवाणो राजा बहुपत्नीयोगस्य निमित्तोपनिपातेनानुमतिं कुर्वन्नपि एकस्या बहुपतिकत्वं न क्वचिदपि लोके शास्त्रे चेति वदन्नेकस्या अनेकपुंयोगः पापायेति बोधयति ।

याज्ञवल्क्यस्मृतावपि बहुविवाहानभिधानम् ।

याज्ञवल्क्यस्मृतिस्थं स्त्रियः सेव्या इति बहुवचनं तु मातरः पूज्याः पितरो वन्द्या गुरवो नम्याः परयोषितः पुरस्तादेव परिहरणीया इत्यादाविव व्यक्तिगतबहुत्वाभिप्रायेणेति स्त्रियः सेव्या इति वदन्नृषिस्तेन तेन पुंसा स्वा स्वा स्त्री सेव्येत्यर्थं बुबोधयिषतीति न किंचिदिदं, यदपि महर्षेर्याज्ञवल्क्यस्य स्वयं-दारद्वयनिदर्शनेन अनेकविवाहधर्म्यत्वाभिधानं तदेतदपि मन्दानामेव, न हि निमित्तोपनिपातं विना दारद्वयं पर्यणैष्ट मुनिरिति प्रमाणसंदर्शनादृतेऽस्माभिः श्रद्धातव्यं त्वदायसशपथकथाशतेनापि इति ।

यदपि "अग्निहोत्रादिशुश्रूषां बहुभार्यः सवर्णया । कारयेत्तद्बहुत्वे च ज्येष्ठया गर्हिता न चेत्" ॥ इति वचनेनानेकपत्नीपरिणयस्य धर्म्यत्वाभिधानं तदेतदप्यधिवेदननिमित्तोपनिपाते कृताधिवेदनस्य पुंसः सवर्णानेकपत्नीसमवाये ज्येष्ठाया अग्निहोत्रादिकर्मसु पुरस्करणीयतामात्रगमकमिति नानेन बहुदारपरिग्रहो निमित्तादृते धर्म्य इति शक्यं बोधयितुम् ॥

यदपि केचित् "तस्मादेको बह्वीर्विन्देत" "तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्या बहवः सह पतयः" इत्यादि श्रुतिवाक्यं बहुविवाहबोधकमित्यातिष्ठन्ते तदेतदज्ञातशास्त्रसमयानां स्वप्रज्ञाविलासमात्रं, तथा हि किमनेन वाक्येन नित्यतया बहुविवाहो बोध्यते? उत काम्यत्वेन? आहोस्विन्नैमित्तिकत्वेन? तत्र न तावदाद्यः तस्य

नित्यत्वे तमकुर्वतां प्रत्यवायापत्तेः, न चेष्टापत्तिस्तथा सत्येकभार्याव्रतानां मर्यादैकरक्षकाणां श्रीरामप्रभृतीनामपि प्रत्यवायप्रसक्तेस्तत्रापि चेष्टप्रसञ्जने जगद्व्यवहारोपप्लवप्रसङ्गात्, नहि बहुभार्या एव जगति सन्तो नेतरे इति शास्त्रेषु शृणुमः, द्वितीयेऽपि च कल्पे स्वर्गादिकामनया क्वचिदपि न बहुविवाहश्रुतिमुपलभामहे, यदि च बहुपुत्रोत्पादनद्वारा बहुदारपरिग्रहः स्वर्गहेतुरिति साधयन् लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैरिति स्मृतिस्थं बहुवचनमेव बहुदारपरिग्रहधर्म्यतावगमकमिति ब्रूषे तर्हि तदपि न युक्तं बहुदारपरिग्रहवतामपि कदाचिदपत्यानुत्पत्तेरेकदारवतोऽपि च बहुसंतानदर्शनेन बहुविवाहस्य तत्रान्यथा सिद्धत्वात्।

तृतीये तु कल्पे ओमिति ब्रूमः पुत्राद्यनुत्पादस्य बहुविवाहनिमित्ततायाः मयाऽप्यङ्गीकृतत्वात्। तथा च मनुः "वन्ध्याऽष्टमेऽधिवेद्याऽब्दे दशमे तु मृतप्रजा। एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी" इति, यदि तु रतिमात्रार्थतया प्रवृत्तः पुरुषो बहुविवाहेऽध्यकरिष्यत्तर्हि अष्टमदशमाद्यब्दस्वरूपदीर्घकालप्रतीक्षापुरस्कारेण मनोरधिवेदनविधानमनर्थकमेवाभविष्यदिति प्रव्यक्तमेव। यदि तु नाधिवेदनं कुर्यादिति स्पष्टनिषेधविरहान्नाधर्म्यमधिवेदनमिति मनुषे तर्हि धर्म्यमधिवेदनमिति स्पष्टवचनविरहात्तत्रापि पक्षः पुनरसिद्ध एव "तस्मादेको बह्वीर्विन्देतेति" श्रुतिस्तु न भवदभिमतार्थसाधिकेति पूर्वमेव साधितम्। वस्तुतस्तु "धर्मप्रजासंपन्ने दारे नान्यां कुर्वीतान्यतरापाये तु कुर्वीते" त्यापस्तम्बेन स्फुटं प्रजासत्त्वे धर्मनिर्वाहक्षमदारसत्त्वे चाधिवेदनं निषिद्धमिति न कथंचिदपि निर्निमित्तं बहुदारसंग्रहः शास्त्रीय इति कृतमेतस्याशास्त्रीयस्य निर्बलपक्षस्य निराकरणसंनाहेन सिद्धान्ताध्वप्रदर्शनश्रमाणामस्माकमिति पुष्कलम्॥

कालभेदेनाप्येका नानेकान् धर्मतः परिणेतुमर्हति ।

यथैको निमित्तोपनिपाते बह्वीरुद्वोढुमर्हति न तथैका समकालं विभिन्नकालं वा बहुभिः परिणेतुं धर्मतोऽर्हति तथा हि श्रुतिः, "यदेकस्मिन् यूपे द्वे रशने परिव्ययति तस्मादेको द्वे जाये विन्देत । यन्नैकां रशनां द्वयोर्यूपयोः परिव्ययति तस्मान्नैका द्वौ पती विन्देत" ॥ इति, न च यथा एकः कालभेदेन निमित्तोपनिपाते बह्वीरुद्वहति तथैकापि निमित्तसत्त्वे कालभेदेन बहूनुपग्रहीतुमर्हति तथा च श्रुतिः "तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्यै बहवः सह पतयः" इति, अत्र साहित्येन बहुपतिकत्वनिषेधात्कालभेदेन स्त्रीणां बहुपतिकत्वं सिद्ध्यति, भवति चात्र पुंसां कालभेदेन बहुपत्नीकत्वन्यायोऽप्यनुकूल इति वाच्यम्, यतः स्त्रीणां पुंसामिव बहुपरिणयसाम्ये "तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्या बहवः सह पतय" पुरुषापेक्षया स्त्रियो वैजात्यमवगमयन्ती श्रुतिर्विप्रकृता स्यात् यदि तु पुंसामेकस्मिन् कालेऽपि बहुपत्नीकत्वं स्त्रीणां तु बहुपतिकत्वं नैकस्मिन् काले किन्तु कालभेदेनेति विवक्षितवैषम्यनिर्वाहसंभव इत्युच्यते तर्हि श्रुत्यन्तरे दृष्टान्तीकृतस्य एकरशनाया यूपद्वयपरिव्याणाभावस्यासंगतत्वप्रसङ्गः, । नहि द्वयोर्यूपयोः कालभेदेनापि एकरशनापरिव्याणमदृष्टायेत्यध्वरमीमांसका आतिष्ठन्ते, ततश्चैकरशनायाः कालभेदेनापि यूपद्वयपरिव्याणं यथा नादृष्टाय तथैवैकस्या रशनास्थानीयस्त्रिया यूपस्थानीये पुरुषे कालभेदेनाप्यभिसंबन्धो नादृष्टायेति बोधिते तस्मादेको बह्वीर्विन्देत नैकस्या बहवः सहपतय इति श्रुतिस्थं सहपदं तस्मादेकः सह बह्वीर्विन्देत इत्यन्वयनीयं न तु यथाश्रुतमितरथा तु कालभेदेन पुंसामिव स्त्रीणामपि बहुपतिकत्वस्यानुमतत्वे विवक्षितवैलक्षण्यानुपपत्तिरिति व्यक्तमेव । एकस्य पुंसोऽपि बहुपत्नीपरिणयो यथा नैच्छिकस्तया तूल्यमेवेति न किंचिन्न्याय्यमवशिष्यते । स्त्रीणां क्रमिकोऽपि

यथा न पतिद्वयपरिणयस्तथा मनुः स्वयं स्पष्टमाचष्टे " कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः । न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥ आसीताऽऽमरणात् क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी । यो धर्मएकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥ नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे । न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद् भर्तोपदिश्यते " ॥ अत्र क्वचिदित्युक्त्या धियमाणे म्रियमाणे वा पत्यौ न स्त्रियाः पुमन्तरयोगः शास्त्रीय इत्युच्यते । साध्वीत्युक्त्या चातथाकारिणीनां शास्त्रोल्लङ्घित्वमाख्यायते इति स्त्रीणां पुमन्तरयोगस्यात्यन्तमशास्त्रीयत्वेऽपि तथाऽभिधानं केषांचिदमीषां विज्ञानवारिधित्वमेव व्यनक्तीति नाव्यक्तं विदुषाम् ।

केचित् पुनः स्वयं नष्टाः परान्नाशयन्तीति न्यायार्थं नाटयन्त इव संयतमनसां साध्वीनामपि द्वितीयपतिप्रबन्धमिच्छन्तः " प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः । विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् " ॥ इति मानवं वचो धर्मकार्यार्थं देशान्तरं यातः पतिरष्टौ वर्षाणि पत्न्या प्रतीक्षणीयोऽनन्तरं तु पत्यन्तरमवलम्बनीयमित्येतदर्थकमिति प्रलपन्ति ; तदिदमत्यन्तमसत् अत्र हि प्रकरणे गृहस्थो देशान्तरं प्रवत्स्यन् भार्याया वृत्तिमुपकल्प्य प्रवसेदित्युक्तं " विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः । अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत् स्थितिमत्यपि ॥ विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता । प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥ इत्यादिना ग्रन्थसंदर्भेण, ततश्चैवं धर्मकार्यार्थं निर्यातः पतिः पत्न्या अष्टौ वर्षाणि प्रतीक्ष्यस्तदनन्तरम् अनागच्छति तु पत्यौ पत्नी तं देशमियादधिगच्छेच्च स्वपतिमित्यर्थोऽभिप्रेतो न तु पत्यन्तरावलम्बनमिति न किञ्चिदिदम्, अत एव तु वसिष्ठः " प्रोषितपत्नी अष्टवर्षाण्युपासीत ऊर्द्ध्वं पतिसकाशं गच्छे " दिति सुस्पष्टं पतिसांनिध्यगमनमेतेन विधीयते न त्वनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं पत्यन्तरावलम्बनमिति ।

धनं गृहीत्वा कन्यादाननिषेधः ।

विवाहविधिप्रकरणेषु तत्र तत्र कन्यापित्रादिना धनं न ग्राह्यमिति स्थितिः, तथा हि मनुः "आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् । अल्पोऽप्येवं महान् वापि विक्रयस्तावदेव सः" ॥ इति विवाहविशेषे विहितमपि शुल्कमग्राह्यं मनुर्मन्यते स्म तादृशधनादानस्य कन्याविक्रयरूपत्वात् ।

समन्यायेन वरपत्तायैरपि हठेन पणेन च धनं न ग्राह्यमिति स्थितिः ।

वरापेक्षया कन्याया अल्पं वयोऽपेक्षितम् ।

एवं सर्वत्र धर्मशास्त्रेषु आयुर्वेदशास्त्रेषु च स्वाल्पवयस्काया एवोद्वाह्यत्वाम्नानान्नाल्पवयाः स्वाधिकवयस्कामुद्वहेदित्यार्यमर्यादा सनातनी ॥

वृद्धविवाहो न धर्म्यः ।

एवं चत्वारिंशदधिकवया अपि नोद्वोढुमर्हति, संतत्युत्पादनयोग्यकालमधिकृत्य यथाहुर्भिषजां वराः—"न च वै षोडशात्पूर्वं सप्तत्याः परतो न च" एवं च स्त्रीणां रजःकाले पुंसपर्कस्यावश्यकत्वाद् दृढाङ्गानामपि च पुंसां सप्ततिपर्यन्तमेव ऋतुदानसामर्थ्यस्य सम्भावितत्वान्न कथं चिदपि चत्वारिंशदधिकवया बालिकामुद्वहेदिति सिध्यति ॥ शम् ॥

इति श्रीपरमपूरुषकृपासरित्पूरपरीवाहपूर्णपात्रस्य ब्रह्मामृतवर्षिणीसभासंपादकस्य श्रीराममिश्रशास्त्रिणः कृतावुद्वाहसमयमीमांसा समाप्ता ॥ शुभम् ॥

काशीस्थसुप्रसिद्धवेदविद्यालयप्रधानाध्यापकेन पाठकोपनाम श्रीयुगलकिशोरव्यासेन परिशोध्य प्रकाशमुपयापिता ॥



पण्डित रामभिश्रशास्त्री की रचित पुस्तकें ।

मन्त्रमीमांसा	।)॥
व्रात्यसंस्कारमीमांसा	॥=)
उद्वाहसमयमीमांसा	।=)॥
शुद्धिसर्वस्वम्	॥)॥
स्तोत्ररत्नसमीक्षा	

[निम्नलिखित पुस्तकें अभी छपी नहीं हैं] ।

दत्तकविजयवैजयन्ती ... ...
सर्ववेदतात्पर्यनिर्णयः ... ...
वेदान्तषड्वृत्ति (रामानुजवृत्ति)
बलाबलपरीक्षा ... ...
मीमांसाकोश ... ...
परिचर्य्या (श्रीसम्प्रदाय के आचार्यों का संक्षिप्तवृत्तान्त)
सुबोधव्याकरण (पूर्वार्द्ध, वैदिक) ...
" (उत्तरार्द्ध, लौकिक)

* प्रशस्तिसर्वस्व (जिस में राजा, प्रजा, मित्र, गुरु, पिता, भार्य्या इत्यादि के समीप संस्कृत पत्र लिखने की रीतियां वर्णित हैं) जिसे चाहिये मुझको लिखे ।

महामोहविद्रावणम् (संस्कृत मोहनलालवेदान्ताचार्यप्रणीत)	ये दोनों छपी हैं	।=)॥
" (भाषा पण्डित विजयानन्दकृत)		।=)॥

पण्डित विजयानन्द त्रिपाठी,
सेक्रेटरी ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा,
भदैनी, बनारस ।

* This book gives practical "forms" for writing letters (1) to superiors as Guru, king, parent &c., (2) to equals as wife, friend &c. and (3) to inferiors as servant, subject &c.

